


॥ श्रीः ॥

ज्यौतिषमीमांसा-दर्शनम्

भाषा-व्याख्या-सहितम् ।

परिशिष्टसूत्रैः प्रमाणैश्च समलंकृतम् ।

श्रीनीलाम्बरराजज्योतिर्विदात्मजेन साम्प्रतं जुब्बलेश्वरराज ज्यौतिषिणा, राजकुमारगुरुणा ज्योतिर्भूषणेन पं. तारादत्त ज्योतिर्विदा प्रणीतम् ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.




संवत् १९९६, शके १८६१.



भूमिका ।

मैंने ज्यौतिषमीमांसा–दर्शन-नामक सूत्र-ग्रन्थ संस्कृत–भाषा में बनाया था । कुछ सज्जनों के अनुरोध से भाषा–व्याख्या भी बनाई थी । इस के दो खण्ड हैं । प्रथमखण्ड में ग्रह नक्षत्र आदि ताराओं के अनुसार शुभाशुभ फल का होना तर्क से सिद्ध किया हुआ हैं । उत्तरखण्ड में नक्षत्र चक्र के बारह विभागों से पृथक् २ शरीर, धन, भाई, मित्र, पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, धर्म, राज्य, लाभ और व्यय का ज्ञान अनुमानसे सिद्ध किया हुआ है । कुछ समय के अनन्तर ज्यौतिषविज्ञान एक छोटा ग्रन्थ भी बनाया था । उस में वैज्ञानिक रीति से फलित की उपपत्ति लिखी हुई है । इस ग्रन्थ में वह दार्शनिक रीति से लिखी हुई है । ज्यौतिषविज्ञान के साथ सूत्र भी छपवाये थे । अब सविस्तर व्याख्यासहित सूत्र प्रकाशित करने का विचार किया है, कार्य का कारण विदित होने पर ही बुद्धि का विकाश होता है । इस अभिप्राय से मैंने फलित की उपपत्ति समझने के लिये अत्यन्त परिश्रम किया । जो कुछ मुझे उसका अंश विदित हुआ, उसे सज्जनों की सेवा में निवेदित करने के लिये मैंने यह ग्रन्थ बनाया है । आशा करता हूं कि सज्जन पुरुष इसपर कृपा कटाक्षविक्षेप करके अवश्य मेरा परिश्रम सफल करेंगे ।

भवदीय—

पं० तारादत्त ज्योतिषी,

श्रीयुत स्वामी रामतीर्थजी महाराज एम ए. के शिष्य आर एस स्वामी नारायणजी की लिपिकी प्रतिलिपि—

यह देखकर चित्त प्रसन्न हुआ कि अलमोडा निवासी श्रीमान् पंडित नीलाम्बरजी ज्योतिर्ज्ञ के सुपुत्र पं० तारादत्त ज्योतिर्विद् ने स्वरचित ज्योतिःशास्त्र की एक पुस्तक ज्यौतिषमीमांसादर्शन के सूत्रपाठ का सरल हिन्दीभाषा में अर्थ किया है।

श्रीगढवाल देशान्तर्गत श्रीनगरनिवासी प्रोफेसर पं० ईश्वरीदत्तजी शास्त्री बी. ए. की हस्तलिपि की प्रतिलिपि—

विपश्चिद्वरश्रीनीलाम्बरतनूज पं० तारादत्तशर्मविरचितं ज्यौतिषविज्ञानं ज्यौतिषमीमांसादर्शनं च निरीक्ष्य निःसनामिः समाह्लादोऽनुभवविषयतां नीतः। ग्रन्थद्वय एव, तत्तद्भावस्फुटीकरणरमणा तीक्ष्णधिषणैकगम्यविषयावगाहना क्षममानसमानुषसंपादनचणातीव विचित्रोदाहरणप्रणाली। अलौकिकयुक्तयः प्रतिपदमात्मानमाविर्भावयन्ती प्रतिभा चाप्रतिमा प्रतिभाति, इति सहृदयहृदयमेव प्रमाणम्। ग्रन्थद्वयप्रशंसने यत् किमप्यनल्पं लिख्येत तदल्पमेव भविष्यतीति विचारयन्तीव विरमति वराकी लेखनी। ज्योतिःशास्त्रहितैषिणो मनीषिण उक्तग्रन्थद्वयोद्धारप्रचारेणावनतिभूमौ लुठते गीर्णाय ज्यौतिषाय हस्तावलम्बं वितरिष्यन्ति।

ग्रन्थकर्तुः प्रशस्य श्रमं च विश्वजनीनतां नेष्यन्तीत्याशास्ते प्रोफेसर ईश्वरीदत्तशर्मा शास्त्री ।

वजीर साहिब पं० नारायणदत्त जी राजज्योतिषी राजधानी धामी की हस्तलिपि की प्रतिलिपि—

श्रीपंडितनीलाम्बरात्मज—तारादत्त दैवज्ञनिर्मितं ज्यौतिषमीमांसा-दर्शनं ग्रन्थमवलोक्य मया महानानन्दः प्राप्तः, पुरातनानि ज्योतिष-पुस्तकानि बहूनि सन्ति । साम्प्रतमपि दैवज्ञैर्बहुशो रचितानि सन्ति । परन्तु यथैतद्ग्रन्थे द्वादशभावफलोपपत्तिर्वर्णिता तथा नान्यत्रेति ।

सर्वोत्तमोऽयं ग्रन्थो दैवज्ञैरादरणीय इति संमतिः, पंडितन.रा-यणदत्तशर्मणो धामीवासिनः ।

महामहोपदेशक ज्योतिर्भूषण पं०रामदत्तजी ज्योतिर्विद् संपा-दक, श्रीगणेशमार्तण्ड सौरपक्षीय पञ्चाङ्गकी हस्तलिपिकी प्रतिलिपि—

ज्यौतिष-मीमांसा-दर्शन सहित ज्यौतिष—विज्ञान नामक पुस्तक मिला,प्रसन्नता हुई । आपकी विद्या और बुद्धिको शतशः धन्यवाद हैं । एतादृश वैज्ञानिक और दार्शनिक पुस्तक आपके सदृश पण्डित कुल-पंति ज्योतिषरत्नमहानुभावों के अतिरिक्त अन्य जन नहीं बना सकते । भगवान् आपको चिरायु करे और ज्योतिःशास्त्र उन्नति-कार्य में सफलता करे ।

पं० रामदत्त ज्योतिषी.

ज्यौतिषमीमांसादर्शन–विषयानुक्रमणिका ।



प्रथम खण्ड ।

उत्तर खण्ड ।

विषय.	पृष्ठ.

इति विषयानुक्रमणिका ।

नोट–आद्यश्लोके तट्टीकायां च 'पत्त्यर्थं' इत्यत्र 'पत्त्यर्थस्व–' इति शुद्धम् ।

श्रीपरमात्मने नमः ॥

ज्यौतिषमीमांसादर्शनम् ।



वक्तृ-श्रोतृ-संवादक्रमेण भाषाव्याख्यासहितम् ।

मङ्गलाचरणम् ।

तारादत्तं नमस्कृत्य तारादत्तेन रच्यते ॥
तारादत्तोपपत्त्यर्थं स्वसूत्रविवृतिः स्फुटा ॥१॥

अर्थः—तारेण ॐकारेण आदत्तम् गृहीतम् परमात्मानम् नमस्कृत्य तारादत्तेन तारादत्ताख्येन पुरुषेण ताराभिर्ग्रहसंयोगेन दत्तस्य शुभाशुभफलस्य या उपपत्तिः तदर्थानां स्वसूत्राणां या विवृतिः सा तारादत्तोपपत्त्यर्थं स्वसूत्रविवृतिः स्फुटा रच्यते ॥ १ ॥

वक्ता—अस्ति फलं खेचरचारानुसारात् ॥ १ ॥

(क) १ खेचरस्य खेचरशब्दस्य ज्योतिःशास्त्रग्रन्थेषु ग्रहमात्रवाचित्वेन नियतस्यापि यः चारः सर्वेषु नक्षत्रेषु परेष्वपि ज्योतिःषु संचरणम् तस्य अनुसारात् फलम् फलितोपपत्तिरूपम् अस्मिन् ग्रन्थे अस्ति । अस्मिन् ग्रन्थे खेचरशब्देन ग्रहाणामृक्षाणाम् अन्येषां च ज्योतिषामनुभूयमानभ्रमणानां ग्रहणं व्यवहारार्थं स्वीकृतमित्यर्थः ।

सत्य है, कि आकाश-चारियों के चार के अनुसार मनुष्यादिकों के सुख-दुःख आदि का ज्ञान हो सकता है ॥ १ ॥

(ग्रह, नक्षत्र और तारे भी जो आकाश में चलते दिखाई देते हैं, आकाश-चारी कहलाते हैं)

श्रोता–सुनकर मन में सोचने लगा–अनेक आधुनिकलोग तो कहते हैं कि आकाश–चारियों के अनुसार मनुष्यों के सुख दुःख आदि का ज्ञान असंभव है, क्योंकि उनके अनुसार वह किसी युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकता हैं, इस कारण ज्यौतिष-फलित-विद्या असत्य है । परन्तु वक्ता–कहता है, कि अवश्य सत्य है, इसकारण मुझे पूछना चाहिये कि "आकाश-चारियोंके चार के अनुसार सुख दुःख आदि का ज्ञान अनुमान से किसप्रकार सिद्ध होता है ?" क्योंकि जबतक वह अनुमान सिद्ध न होगा, तबतक उनकी युक्तियों का समाधान होना असंभव है, वे प्रायः यही कारण बतलाते हैं, कि आकाश–चारियों के चार के अनुसार सुख दुःख आदि का ज्ञान अनुमान-द्वारा सिद्ध नहीं होता है ।

सोच कर प्रकट बोलाः–आकाश–चारियों के चार के अनुसार मनुष्यादिकों के सुख–दुःख आदि का ज्ञान अनुमान-द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

वक्ता—आर्तवशीतादीनां स्थूलेष्विव तदुत्पादक-
सूक्ष्मेषु तत्तत्त्वगुणानां सिद्धेः ॥ २ ॥

जिसप्रकार ऋतु-सम्बन्धी शीत आदि का गुण स्थूल-शरीर में होता है, उसी तरह आकाश-चारियों के तत्त्वों का गुण भी स्थूल—शरीर के अन्तर्गत सूक्ष्म-शरीर में होता है । जिसप्रकार ऋतु-संबन्धी शीत आदि स्थूल—शरीर के अवयवों में उनके तत्त्वों के अनुसार सुख वा दुःख प्रकट करते हैं, उसीप्रकार आकाश-चारियों के तत्त्वों का प्रभाव भी स्थूल-शरीर के अन्तर्गत सूक्ष्म-शरीर में प्रति-मनुष्य शुभाशुभोत्पादक तत्त्वों के अनुसार पृथक् २ होता है जैसा कि शीत-काल में शीत के व्याप्त होनेपर कुछ मनुष्यों के शरीर में स्वस्थता होती है, कुछ मनुष्यों के शरीर में शीत-सम्बन्धी रोग होते हैं, कोई वहुत दुःखित होजाते हैं, कोई कुछ भी नहीं समझते हैं, इसप्रकार अपने २ शरीर के शीत आदि के अनुसार अनेक प्रकार के सुख और दुःख सब को प्राप्त होते हैं। शीत जिनके शरीर को अनुकूल होता है उन्हें उसके व्याप्त होनेपर सुख अनुभूत होता है और वह जिनके शरीरको प्रतिकूल होता है अर्थात् जिनका शरीर शीत सहन करने में समर्थ नहीं है, उनको दुःख होता है, उसीप्रकार आकाश-चारियोंके तत्त्वों का समूह भी, जो उनके सर्वदा भ्रमण करते रहनेसे

प्रतिसमय अनेक प्रकारका होता रहता है, जिस समय जिसके कर्म-मय सूक्ष्म-शरीर के तत्त्वों का अनुकूल होता है उस समय उसके अधिष्ठाता को सुख होता है और जिस समय प्रतिकूल होता है उस समय दुःख होता है। जिस समय उन शुभाशुभोत्पादक तत्त्वोंमेंसे जिस तत्त्व का अनुकूल आकाश-चारियों के तत्त्वों का समूह व्याप्त होता है, उस समय वह उसके प्रभावसे प्रकट हो कर अपने गुणों के अनुसार बुद्धि उत्पन्न करता है अर्थात् उसी प्रकारके अहंकार-तत्त्व आदि तत्त्वों के प्रकट होने पर उनके द्वारा स्थूल-शरीर के अवयवों के प्रेरित होने से सुख, दुःख पृथक् २ उत्पन्न होते हैं जैसा कि शरीर में कफ आदि वस्तुओंमें से जिसके अनुकूल शीत आदि जिस समय व्याप्त होते हैं, वह उस समय उनकी सहा-यता से प्रकट होकर अपना स्वभाव जाहिर करता है; जो दृढ होता है और शरीरका विरोधी नहीं होता है, वह शरीर में पुष्टि करता है;जो अदृढ वा शरीरका विरोधी होता है वह अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर दुःख देता है। शुभाशुभोत्पादक तत्त्वोंमेंसे भी जो जो धनोत्पादक आदि दृढ और अन्य तत्त्वोंसे दूषित नहीं होते हैं वे अपने अनुकूल समय में प्रकट होकर धन आदिका सुख देते हैं और जो अदृढ वा अन्य तत्त्वोंसे दूषित होते हैं वे धन आदिकी चिन्ता और उसके द्वारा नाना प्रकार का दुःख उत्पन्न करते हैं। अन्तर

इतना ही है कि शुभाशुभोत्पादक तत्त्व सूक्ष्म-शरीर-वर्ती होने से बुद्धि-तत्त्व आदि तत्त्वों के द्वारा अपना गुण प्रकट करते हैं, कफ आदि स्थूल-शरीरवर्ती होने के कारण उस क्रम के विना अपना गुण प्रकट करते हैं अर्थात् स्थूल-शरीर के धातुओं का व्यापार करके फल-दायक होते हैं ।

[शुभाशुभोत्पादक तत्त्वः—वे तत्त्व कहलाते हैं कि जो पूर्व-जन्ममें किये हुए कर्मों से कर्म-शरीर में, जो कि स्थूल-शरीर के भीतर एक सूक्ष्म-शरीर है, सूक्ष्मरूप से संचित रहते हैं । स्थूल-शरीर के भीतर उसके होने में एक प्रमाण यह है, कि यदि वह न होता तो स्वप्न अवस्थामें व्यापार न हो सकते । स्वप्न में अनेक प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं, चलना, खाना और बोलना आदि सभी कार्य जाग्रत् अवस्था के समान अनुभूत होते हैं । कोई जाग्रत् अवस्था से विचित्र व्यापार भी अनुभूत होते हैं । स्थूल-शरीर के अन्दर सूक्ष्म-कर्म-मय शरीर मानने पर ही उनकी सिद्धि होती है । ऐसा अनुमान होता है कि उस समय सूक्ष्म-शरीर ही में इन्द्रियों के व्यापार करने से वहाँ के व्यवहारों को जीव इस प्रकार अनुभूत करता है कि जिस प्रकार जाग्रत् अवस्था में उनके स्थूल-शरीर में व्याप्त होने से बाह्य पदार्थों को । पञ्चदशी में लिखा हुआ भी है—"अभाने स्थूलदेहस्य स्वप्ने यद्भानमात्मनः । सोऽन्वयो व्यतिरेकस्तद्भानेऽन्यानवभासनम् ॥"]

(प्रश्नः–अनेक आधुनिक और प्राचीन लोगों की भी संमति है, कि वही विषय स्वप्न में दिखाई देते हैं जो कि जाग्रत् अवस्था में अनुभूत होते हैं ?

उत्तर–इस से हमारे पक्ष की हानि नहीं, किन्तु पुष्टि होती है जो २ व्यवहार मनुष्य जाग्रत् अवस्था में करता है, वा देखता सुनता विचारता है उनके सूक्ष्म अंशोंको मन अपनी स्वाभाविक ग्राहिका शक्ति से उस प्रकार आकृष्ट कर लेता है कि जिस प्रकार फोटोग्राफ रूपको। जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियों के स्थूल-शरीर में व्यापार करनेके कारण वे प्रत्यक्षरूप में भासमान नहीं होते हैं स्वप्ना-वस्था में वे मन के साथ सूक्ष्म-शरीर में व्याप्त होजाते हैं, इस कारण सूक्ष्म-शरीर के साथ उनका संबन्ध होता है, उसमें संचित होने के कारण जाग्रत्-अवस्था में आकृष्ट किये हुए पदार्थों को इन्द्रियों से जीव अनुभूत करता है)

श्रोता–आकाशचारी भूगोल से बहुत दूरी पर हैं, उनके तत्त्वों-का गुण यहां किस प्रकार हो सकता है ? यह बात संसार में प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जो वस्तु समीप में होती है, उसका पूरा गुण होता है । जो कुछ दूरी पर होती है उसका अल्प होता है, और जो बहुत दूरी पर होती है उसका कुछ भी गुण नहीं होता है, जैसा कि यदि कस्तूरी समीप में होती है उसका पूरा गुण प्रतीत

होता है, यदि कुछ दूरी पर होती है तो अल्प ही होता है और अधिक दूरी पर होने से कुछ भी नहीं होता है। जब कि दूर-स्थित भूगोल ही के पदार्थ का गुण न होता है तो आकाश-चारियों का, जो कि भूगोल से बहुत दूरी पर हैं, किस प्रकार गुण होता है?

वक्ता—न दूरस्थत्वात्तदभावः ॥ ३ ॥

सत्य है कि आकाश-चारी भूगोल से दूरी पर हैं परन्तु दूरीपर होने के कारण उनके गुण का अभाव नहीं होता है, किन्तु वह अवश्य होता है, भ्रम होने के कारण आपके चित्त में शङ्का उप-स्थित हो रही है।

श्रोता—भ्रम तो हो ही रहा है, उसे दूर कीजिये आकाश-चारियों में ऐसी कौनसी विशेषता है, कि जिससे ऐसी दूरी में होने पर भी उनका गुण होता ही है?

वक्ता—सुमहत्तमत्वात् ॥ ४ ॥

आकाश-चारियों के भूगोल से बहुत दूरी में होने पर भी उनके तत्त्वों का गुण अवश्य ही होता है क्यों कि वे बहुत बड़ेसे बडे हैं। यही कस्तूरी आदि भूगोल के पदार्थों से उनमें विशेषता है।

कस्तूरी आदि वस्तु जिनका गुण अधिक दूरी में होने से आपको अनुभूत नहीं होता है, बहुत अल्प हैं, आकाश-चारी उनकी अपेक्षा अत्यन्त बडे हैं, इस कारण उनके विषय में यह कस्तूरी आदि का दृष्टान्त चरितार्थ नहीं हो सकता ।

क्योंकि--नानर्थकं दूरस्थमपि सुमहीयः ॥ ९ ॥

थोड़ी दूरी में होने पर भी अल्प वस्तु का गुण नहीं होता है, अधिक वस्तु का गुण दूरी में होने पर भी होता ही है । आप कस्तूरी ही से परीक्षा कर लीजिये-थोडी कस्तूरीका जितना गुण उसके समीप में अवस्थित होने से आप को अनुभूत होता है, उससे अधिक का अधिक होगा । जितनी दूरी में होने से थोडी कस्तूरीके गुण का अन्त होता है अधिक का उससे अधिक दूरी में होने पर गुण का अभाव होगा । इस से स्वयंसिद्ध हुआ कि आकाश-चारियोंके अत्यन्त वडे होनेके कारण बहुत दूरी में होने पर भी उनका गुण होता ही है ।

श्रोता--आपके कहने के अनुसार स्पष्ट ही सिद्ध होता है कि दूर होने से वस्तु का गुण हीन होता है, जो वस्तु अल्प होती है उसका गुण थोडी दूरी में हीन हो जाता है, अधिक का गुण अधिक दूरी में हीन होता है । इस कारण अत्यन्त अधिक का भी अत्यन्त

अधिक से अधिक दूरी में गुण हीन होजाना चाहिये, इस कारण यदि आकाश-चारी अत्यन्त अधिकसे अधिक दूरी में हैं तो उनका गुण भी हीन हो जाना चाहिये। परन्तु इस बात का ज्ञान किस प्रकार हो जाय कि आकाश-चारी उतनी दूरी में हैं, जितनी में उनका गुण नहीं हो सकता है। यद्यपि शास्त्रमें उनकी दूरी के योजन आदि प्रमाण लिखे हुए हैं, गणित-विद्या के द्वारा भी सिद्ध हो सकते हैं, तथापि साधारण लोगोंको ऐसा निश्चय नहीं हो सकता है कि 'यह अत्यन्त अधिक से अधिक दूरी नहीं है' क्योंकि सब वस्तुओंके लिये ऐसे योजन प्रमाण ज्ञात नहीं हैं जिन से स्पष्ट जान लिया जासकें कि 'इतने में अत्यन्त अधिकसे अधिक दूरी होती है'। ऐसी दशा में किस प्रकार सब साधारण लोगोंको विदित हो जाय कि 'आकाश-चारी उतनी दूरीमें नहीं हैं' जितनी में उनके गुणों का अभाव हो जाय किन्तु इतनी दूरी में हैं जितनीमें होने से उनका गुण अवश्य हो।

वक्ता—न तेषामन्यथा प्रकाशश्च ॥ ६ ॥

यदि आकाशचारी भूगोल से उतनी दूरी में होते, जिससे उस में उनके तत्त्वों का गुण नहीं हो तो उनका प्रकाश भी यहाँ नहीं होता। जब कि हमें उनका प्रकाश प्रत्यक्ष दिखाई देता है और वे आकाश में चमकते दिखाई देते हैं, तो स्पष्ट ही विदित होता है

कि उनके तत्त्वों का गुण यहाँ अवश्य होता है। आप प्रत्यक्ष देखिये—कि जिस समय वायुके वेग से स्थूल पदार्थ भी चलायमान हो जाते हैं, क्या उस समय उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पदार्थ चलायमान नहीं होते हैं ? अवश्य ही होते हैं। कुछ अपने मन में अच्छी-तरहसे ध्यान कीजिये—प्रकाश की अपेक्षा बुद्धितत्त्व आदितत्त्व अवश्य ही सूक्ष्म हैं; क्योंकि प्रकाश हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है और वे केवल अनुमान गम्य हैं, नहीं तो प्रकाश के समान वे भी प्रत्यक्ष दिखाई देते। इससे स्पष्ट विदित होता है कि आकाश-चारी उतनी दूरी में नहीं हैं, जिस से यहाँ उनके किरणों की व्याप्ति नहीं हो।

वक्ता-भ्रान्तिरेव स्वल्पात् स्वल्पतरेषु न्रादिषु तद्गुणाभाववादिनाम् ॥ ७ ॥

वे केवल भ्रान्ति ही से कहते हैं कि,—आकाश—चारियोंका प्रभाव मनुष्यादिकों में नहीं पड़ता है। जब कि हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि आकाश—चारियों की अपेक्षा मनुष्य आदि अत्यन्त छोटे से छोटे हैं और वे आकाश में सर्वतः व्याप्त हैं, अर्थात् सम्पूर्ण आकाश उन से घिरा हुआ है तो किसप्रकार कल्पित किया जाय कि उनका प्रभाव यहाँ नहीं पड़ता है ? मनुष्यादिकों

के समान तो कितने ही जीव आकाश–चारियों में व्याप्त हैं, क्या ऐसा भी किसीतरह संभव हो सकता है, कि जिनके आधार में अनन्त मनुष्य आदि रहें उनसे मनुष्यादियों में अधिक सामर्थ्य हो, जिससे कि उन में उनकी प्रभाव शक्तिका कुछ भी कार्य नहीं हो।

वक्ता–श्रोता को अनुरक्त देखकर दृढता के लिये फिर बोला–वे प्रायः कहते हैं कि आकाश–चारी हमारे शरीरों में किस प्रकार लगते हैं ? उनका और हमारा आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है,

न द्रव्यसंयोगादेव गुणः ॥ ८ ॥

यह कोई नियम नहीं है कि द्रव्य का गुण उसके संयोग के विना नहीं हो ।

नान्यथा हिमव्याप्तौ गृहान्तःस्थस्य शीतबाधा ॥ ९ ॥

यदि द्रव्य के संयोग के विना उसका गुण नहीं होता तो बाहर हिम के व्याप्त होने पर अर्थात् सर्वतः फैलने पर मकान के भीतर स्थित मनुष्य को शीत पीडित नहीं करता, उनके कथन के अनुसार तो बाहर के हिम का गुण भीतर कुछ भी न होना चाहिये । क्योंकि घर के भीतर बैठे मनुष्य का बाहर के हिम

के साथ संयोग नहीं है, जैसा कि आकाश-चारी और मनुष्यों का आपस में संयोग नहीं है । और सुनिये—

न ग्रीष्मेऽर्कांशुतापश्च ॥ १० ॥

यदि द्रव्य के संयोग के विना उसका गुण नहीं होता तो ग्रीष्म काल में धूप के व्याप्त होने पर मकान के अन्दर बैठे हुए मनुष्य को उष्णता भी प्रतीत नहीं होती ।

न सूक्ष्मांशयोगकल्पनाद्धानिः ॥ ११ ॥

सूक्ष्म अंशों का संयोग होने के कारण द्रव्य का संयोग मानने पर हानि नहीं अर्थात् यदि कोई कह दे कि वाहर हिम के व्याप्त होने पर उसके सूक्ष्म अंश वायु के साथ मिल कर मनुष्य के शरीर में लगते हैं, इसलिये उसे शीत मालूम होता है, ग्रीष्म समय में वाहर तेज के व्याप्त होने पर इसी प्रकार उसके सूक्ष्म अंशों का भी संयोग शरीर में होता है । यद्यपि द्रव्य का संयोग नहीं हुआ तथापि उसके अवयवों का संयोग होने से अवयव और अव-यवी के अभेदोपचार से उसीका संयोग मान लिया जाता है, परन्तु इस से हमारे पक्ष की हानि नहीं ।

क्योंकि–अत्रापि तत्सद्भावात् ॥ १२ ॥

जिसप्रकार वाहर के व्याप्त हिम और तेज के सूक्ष्म अंशों का संयोग भीतर बैठे मनुष्य के शरीर में होता है,उसीप्रकार आकाश-चारियों के तत्त्वों का संयोग भी मनुष्यादिकों में होता है। हानि तो तभी होती, जब कि आकाश-चारियों के तत्त्वों का संयोग सिद्ध नहीं होता, यद्यपि द्रव्य का ग्रहण करने से उसके अवयवों का भी ग्रहण अवयव और अवयवी के अभेदोपचार से होता है, परन्तु उक्त सूत्र में विशेषता से वाधित होने के कारण नहीं है, क्योंकि " सम्यग्योगः संयोगः " इस व्युत्पत्ति से सम्पूर्ण ही द्रव्य के संयोग का ग्रहण होता है न कि उसके अवयवों के संयोग का।

श्रोता–आप की कृपा से मैं ने साधारणतापूर्वक जान लिया, कि आकाश-चारियों के तत्त्वों का संयोग मनुष्यादिकों में अवश्य होता है, परन्तु यदि कोई और भी युक्ति हो तो उसका भी वर्णन कीजिये।

वक्ता–अन्योन्याकर्षणाच्च तत्सिद्धिः ॥१३॥

आकाश–चारियों के परस्पर आकर्षण करने से सिद्ध होता है कि उनके तत्त्वों का गुण मनुष्यादिकों में अवश्य होता है।

श्रोता–किस प्रकार से ?

वक्ता—तथावश्यं सूक्ष्मतत्त्वव्याप्तेः ॥ १४ ॥

आकाश-चारियोंके परस्पर आकर्षण करने से अवश्य ही उनके तत्त्वों का व्याप्त होना अर्थात् सर्वतः फैलना सिद्ध होता है, क्योंकि आकर्षण में यह स्वाभाविक शक्ति है ।

श्रोता—यह बात दृढ कीजिये, ।

वक्ता—न समन्तादाकर्षणे सूक्ष्मागमः ॥१५॥

सबओर आकर्षण होने पर सूक्ष्म अंश का गमन न होना सिद्ध नहीं होसकता ।

क्योंकि—नान्यथा शाखाद्याकर्षणे तत्सूक्ष्म-पातः ॥ १६ ॥

यदि आप वृक्ष की शाखा का आकर्षण करेंगे, तो उसमें से कुछ न कुछ गिर जायगा, अधिक आकर्षण करने पर पत्र आदि अधिक गिर जायंगे, इसी प्रकार आकाश-चारियोंका अन्योन्य आकर्षण होने से उनके तत्त्वों का पतन अवश्य होता है ।

श्रोता—आकाश-चारियों के अन्योन्य आकर्षण से उनके तत्त्वों का व्याप्त होना समझ लिया, परन्तु उनमें ऐसी अधिक शक्ति का

होना किस प्रकार सिद्ध होसकता है ? सूक्ष्म होने के कारण शक्ति की न्यूनता क्यों नहीं ?

वक्ता-न तान्यशक्तिकानि सूक्ष्मीयस्त्वेऽपि॥१७॥

यद्यपि आकाश-चारियों के व्याप्त तत्त्व अधिक सूक्ष्म हैं तथापि वे सामर्थ्यहीन नहीं,

श्रोता-क्यों ?

वक्ता-सर्वतः समन्ततश्चारित्वात् ॥ १८ ॥

आकाश-चारियों के व्याप्त तत्त्वों में उनके सब ओर विद्यमान होने के कारण सूक्ष्म होने पर भी अधिक सामर्थ्य सिद्ध होता है।

क्योंकि-न तादृशानां नातादृशत्वम् ॥ १९ ॥

जो पदार्थ वैसे होते हैं, वे अन्यथा नहीं होते हैं। जैसे-शीत काल में शीत के व्याप्त होने पर घर के भीतर कोठरी में बैठे हुए मनुष्य के उससे पीड़ित होने से स्पष्ट विदित होता है, कि सब ओर व्याप्त सूक्ष्मवस्तु में अधिक सामर्थ्य होता है।

श्रोता—आकाश-चारियों में आकर्षण शक्ति का होना किस प्रकार सिद्ध होता है?

वक्ता—नाकर्षणशक्त्यभावोऽन्यथा स्थैर्यासंभवात् ॥ २० ॥

आकाश-चारियों में आकर्षणशक्ति का अभाव नहीं है, क्यों कि—अन्यथा उनका अवस्थान असंभव है।

निराधारत्वात् ॥ २१ ॥

वे निराधार हैं, इस लिये परस्पर आकर्षण ही से उनका अवस्थान प्रतीत होता है।

भूगोले तत्सिद्धेश्च तद्बोधः ॥ २२ ॥

भूगोल में आकर्षण शक्ति के सिद्ध होने से विदित होता है कि 'आकाश-चारियों में परस्पर आकर्षण शक्ति है' ॥ २२ ॥

वक्ता—साधारणतया ॥ २३ ॥

आकाश-चारियों में पृथिवी की सदृशता है, इसलिये वह उसमें सिद्ध होने से उनकी भी सिद्धि हो गई ॥ २३ ॥

श्रोता—भूगोल में आकर्षण शक्ति किस प्रकार से सिद्ध हुई ?

वक्ता—उद्गताधःपातलोकात्सा ॥ २४ ॥

यदि कोई चीज ऊपर की तर्फ फैंकी जाती है तो वह नीचे गिरती है, इससे विदित हुआ कि पृथिवी में आकर्षण शक्ति है ॥ २४ ॥

श्रोता-सूक्ष्म शरीर में जो शुभाशुभोत्पादक वस्तु हैं, उनका ज्ञान किस प्रकार हुआ ?

वक्ता—न तदुत्पादकानामभावः ॥ २५ ॥

शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं का अभाव नहीं है ।

क्योंकि—उत्पादकमन्तरोत्पत्तेरसंभवात् ॥ २६ ॥

उत्पन्न करनेवाले के विना किसी वस्तु की भी उत्पत्ति नहीं हो सकती, इस कारण उत्पन्न कार्यरूप वस्तु को देख कर उत्पादकका अनुमान हो सकता है ।

यदि आपने कोई फल देखा, परन्तु उसका उत्पादक वृक्ष नहीं देखा, तथापि आप जान सकते हैं, कि उसका उत्पादक अवश्य है, ऐसा तो कभी न मानेंगे कि वृक्ष-रूप उत्पादक के विना ही फल उत्पन्न हो गया, इसी प्रकार शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं के विना

शुभ और अशुभ का होना असंभव है। सुख और दुःख के अनुभूत होने से स्पष्ट प्रतीत होता है शरीर के भीतर उनके उत्पादक अवश्य हैं।

श्रोता—सुवर्ण आदि वस्तुओं का सुख उनके मिलने से होता है, इसकारण उन्हीं को सुवर्ण आदि सुख का उत्पादक क्यों न मान लेवें ? प्रत्यक्ष वाह्य वस्तुओं को छोड़कर अन्दर शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं की कल्पना से क्या प्रयोजन ? जिसके पास धन है, उसको धन का सुख मिलता है, अन्नवाले को अन्न का सुख मिलता है इसप्रकार जिसके पास जो धन है या जिसका साधन है, वह उसका सुख प्राप्त कर लेता है, इसकारण प्रत्यक्ष सुवर्ण आदि ही को उनके सुख, दुःख आदि का उत्पादक मान लेना चाहिये।

वक्ता—न बाह्यानामेवोत्पादकत्वम् ॥ २७ ॥

बाहर के पदार्थ वस्तुतः शुभाशुभोत्पादक नहीं हो सकते हैं, वे अन्दर के शुभाशुभोत्पादक पदार्थों के कार्यसाधक रूप हैं।

क्योंकि—अन्तरान्तराणि वैयर्थ्यात् ॥ २८ ॥

भीतर के शुभाशुभोत्पादक पदार्थों के विना वाह्य पदार्थोंकी व्यर्थता सिद्ध होती है, अर्थात् सुवर्ण आदि सुख देनेवाले अन्दर के सूक्ष्म उत्पादकों के अन्तर्हित होने पर काम में नहीं आसकते।

श्रोता–इस विषय में दृढता किस प्रकार होती है ?

वक्ता–योगिमूढध्यानाद् दार्ढ्यम् ॥ २९ ॥

योगी और मूर्ख में ध्यान देने से इस विषय में दृढता होती है 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'–(पातञ्जलयोगदर्शन अ० १ सू० २) के अनुसार योगी वह कहलाता है, कि जिसने चित्त के व्यापार रोक लिये हैं। यदि उस सिद्ध योगी के आगे आप सुवर्ण आदि रख देवें तो उससे उसकी प्रसन्नता न होगी, उसको कुछ भी सुख प्रतीत नहीं होगा। यदि सुवर्ण अन्दरके सूक्ष्म सुवर्ण-सुखोत्पादक के व्यापार के विना काम में आ सकता तो योगी को भी उसके मिलने से सुख होता, आभ्यन्तरीय सूक्ष्म उत्पादक के व्यापारके विना काम में आ सकता तो योगी को भी उसके मिलनेके से सुख होता। आभ्यन्तरीय सूक्ष्म सुवर्ण-सुखोत्पादक के क्षीण होने के कारण सामने होने पर भी उसे उसका सुख अनुभूत नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य किसी वस्तु को नहीं पहिचानता है, तो वह चाहे कैसी ही उत्तम क्यों न हो, उसके लिये बेमतलब ही है। कारण यही है, कि सूक्ष्म-शरीर में उसकी ओर बुद्धि तत्त्व का व्यापार नहीं हो रहा है।

श्रोता–मेरे चित्त में एक शङ्का होती है कि ऐसे सूक्ष्म पदार्थों में किस प्रकार ऐसा सामर्थ्य है ?

वक्ता—न सूक्ष्मत्वाद्धीनशक्तिकत्वं नियमाभावात् ॥ ३० ॥

सूक्ष्मरूप होने के कारण शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं की शक्ति हीन नहीं हो सकती है, क्योंकि विजातीय वस्तुओं में ऐसा नियम नहीं है, कि अधिक वस्तु में अधिक शक्ति हो और अल्प वस्तु में अल्प शक्ति हो। सूक्ष्म वस्तुएं भी वडी वडी शक्तियोंसे युक्त दिखाई देती हैं, कोई स्थूल वस्तुएँ भी अल्प ही कार्य करतीं दिखाई देती हैं।

महौषध्यादिध्यानाद् दार्ढ्यम् ॥ ३१ ॥

इस विषय में दृढता के लिये महौषधि आदि वस्तुओं में ध्यान देना चाहिये:-महौषधियां अल्प होनेपर भी कितने ही मिथ्याहार विहारों से उत्पन्न रोगों को जीत कर सुख देती हैं और थोडा ही सर्प का विष प्रभाव-शक्ति से संपूर्ण शरीर में फैल कर प्राण हर लेता है, इसी प्रकार यहाँ भी सूक्ष्म वस्तुओं में महाशक्ति माननेपर किसी दोष का भी आपात नहीं हो सकता है।

श्रोता—शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं का सूक्ष्म-शरीर में होना हमारे चित्त में घटित हो गया है, अब उनकी उत्पत्ति जानने की इच्छा है।

वक्ता--प्राक्तनकर्मभिस्तत्संचयः ॥ ३२ ॥

पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के अनुसार शुभ और अशुभ उत्पन्न होता है, उनसे उत्पन्न शुभाशुभोत्पादक पदार्थ, सूक्ष्म शरीर में संचित रहते हैं।

श्रोता—यदि कोई कह दे कि कर्मों का फल मिलता ही नहीं, उसके लिये क्या उत्तर ?

वक्ता--न कर्मफलाभावोऽन्यथासृष्टिवैचित्र्यासं-भवात् ॥ ३३ ॥

जो लोग कहते हैं कि कर्मों का फल नहीं मिलता है, वे अयुक्त ही कहते हैं।

क्योंकि—चैतन्येन सर्वभूतानां साधारण्यात् ॥३४॥

चैतन्यरूप धर्म तो सब प्राणियों में समान ही है; परन्तु प्राणी अलग अलग प्रकारके दिखाई देते हैं, कोई मनुष्यरूप हैं, कोई पशुरूप हैं, कोई कीटरूप हैं; कोई स्थावर हैं, उन में भी कोई उत्तम हैं, कोई मध्यम हैं, कोई अधम है, मनुष्यजाति में कोई राजा महाराजा आदि हैं, और कोई भिक्षा मांगते २ फिरते हैं। इसप्रकार विचित्रता का कुछ भी अन्त नहीं है। उसके कारणरूप

कर्म नहीं हैं तो हैं क्या ? कारण के विना तो कार्य हो ही नहीं सकता, जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है, जिसने पूर्वजन्म में जैसा कर्म किया है उसी के अनुसार उत्तम मध्यम और अधम योनि में उसका जन्म हो रहा है ।

अवश्यं जन्मान्तरसत्तान्यथाकृतहानाकृताभ्यागमौ ॥ ३८ ॥

पुनर्जन्म अवश्य होता है, उसके न माननेवालों के मत में दो बड़े दोष हैं; उन में से एक का नाम कृतहान और दूसरे का अकृताभ्यागम है, किये का नहीं मिलना कृतहान और विना किये का मिलजाना अकृताभ्यागम कहलाता है ।

फल कर्म करने से मिलता है या उसके विना ? यदि मान लिया जाय कि कर्म करने विना फल मिलता है, तो प्रत्यक्ष दोष का आपात होगा, क्योंकि कर्म करने से फल मिलता प्रत्यक्ष दिखाई देता है:—कृषिकारक कृषिकर्म करके अन्नरूप फल प्राप्त करते प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, व्यापार करनेवालों को व्यापार का फल मिलता भी प्रत्यक्ष दिखाई देता है; नौकरी करनेवालों को नौकरी का फल भी मिलता ही है; इस प्रकार अपने २ पौरुषकर्म के अनुसार सब को फल मिलता प्रत्यक्ष दिखाई देता है । यदि मान लिया जाय

कि कर्म करने ही से फल मिलता है तो किये का न मिलना और विना किये का मिलना सिद्ध नहीं होगा। जो मनुष्य अतिप्रयत्न से भी कार्य करते हैं, किसी समय उनका प्रयत्न भी अकस्मात् व्यर्थ हो जाता है, कोई मनुष्यों को कोई वस्तु किसी समय उद्यम के विना ही मिल जाती है, कोई थोडा ही उद्यम कर बडा लाभ कर लेते हैं, कोई विशेष उद्यम करने पर भी अल्प ही लाभ कर सकते हैं, बडे बडे नीतिज्ञों की भी अकस्मात् हानि हो जाती है, इस कारण यह नियम भी यथार्थ नहीं हुआ कि कर्म करने ही से फल मिलता है, करने ही से फल मिलता है, इस प्रकार प्राक्तन पुण्य-पाप कर्मों के विना सिद्धि नहीं हो सकती। अतएव पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार फल का होना स्पष्ट ही प्रतीत होता है, जिन लोगोंने पूर्वजन्म में जिन वस्तुओं के संबन्धी पुण्य कर्म किये हैं, उनको वे विना कष्ट प्राप्त हो जाती हैं, जिन लोगों ने साधारण कर्म किये उनको कष्ट करने से वे मिलती हैं और जिन लोगों ने पाप किया उनको परिश्रम करने पर भी कुछ नहीं मिलता, अकस्मात् हानि हो जाती है। इसलिये स्पष्ट सिद्ध हुआ कि कर्म करने ही से फल मिलता है।

श्रोता–शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं के विना कर्मों का संचय क्यों नहीं हो सकता ?

वक्ता–आश्रयमन्तरा तत्संचयासंभवात् तत्सिद्धिः ॥ ३६ ॥

आश्रय के विना आश्रयी नहीं रह सकता, इसकारण कर्मों के आश्रयरूप वस्तुओं की कल्पना आवश्यक है । क्योंकि कर्म कोई मूर्तिमान् वस्तु नहीं है, किन्तु कर्म-शब्दसे पुण्य-पापरूप व्यापारका नाम है । इस कारण ऐसा जानना चाहिये कि पुण्य-पाप रूप कर्म करनेसे उनके प्रभावसे जो शुभाशुभोत्पादक वस्तुएँ संचित होती हैं वे ही कर्मशब्द से कहलाती हैं, उपचार से ऐसा हो सकता है ।

श्रोता–सूक्ष्म-शरीर में उनका स्थान कहाँ है ?

वक्ता–महदाद्यन्तर्लीनानि तानि ॥ ३७ ॥

शुभाशुभोत्पादक पदार्थ महदादि तत्त्वों में संमिलित रहते है, अर्थात् उनके भीतर लीन रहते हैं । जिस समय कोई भी मनुष्य पुण्य या पाप कर्म करता है, उस समय उसके प्रभाव से जो शुभाशुभोत्पादक पदार्थ प्राप्त होते हैं, वे सूक्ष्म-शरीर में महत्तत्त्व आदि तत्त्वों में लीन हो जाते हैं । जो जिस तत्त्व का भाग होता है, वह उसी में मिल जाता है । जिसप्रकार कि स्थूल-शरीर में भुक्त अन्न के परिपक्व होने पर उसके भाग यथाक्रम रसादि

धातुओं में मिल जाते हैं। जिस प्रकार स्थूल-शरीर अन्न आदि के आधार से रहता है, उसी प्रकार सूक्ष्म-शरीर कर्म-संवंधी सूक्ष्म पदार्थों के आधार से रहता है। पुण्य-पाप-रूप कर्मों से उनके अनुकूल पदार्थों का संचय होने के विषय में निम्न लिखित दृष्टांत पर ध्यान दीजियेः-

क, वहुत वुभुक्षित अर्थात् अतीव दरिद्र था, धन न होने के कारण अत्यन्त दुखित था। ख ने धन देकर उसके चित्तमें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न कर दिया, वह सच्चे मन से उसे धन्यवाद देने लगा, उस समय उसने इस प्रकार उच्चारण कियाः-धन्य है! धन्य है! ख, वहुत ही धन्य-वाद देने योग्य है जिसने कि ऐसे वडे कष्ट-रूप समुद्र में से मेरा उद्धरण किया। ऐसा उपकारी पुरुष मैंने कोई भी नहीं देखा। क्या करूं मैं ऐसा ही निर्भाग्य और पौरुषहीन हूं, जो कि इस महदुपकार का कुछ भी प्रत्युपकार नहीं कर सकता। परन्तु ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि इसकी इच्छा पूर्ण हो, इसका भला हो, ऐसा ही आनन्द इस के चित्त में भी हो जाय इत्यादि। यहां सूक्ष्म-दर्शी विद्वान् जान सकते हैं कि क ने जो ख को इस प्रकार धन्य-वाद दिया है, उससे ख के सूक्ष्म-शरीर में क के सूक्ष्म-शरीर से धनोत्पादक पदार्थ पहुँचा है वहाँ धीरे २ परिपक्व होकर वह सूक्ष्म पदार्थों में मिल जायगा।

श्रोता——फल की उत्पत्ति का सविस्तर वर्णन कीजिये ।

वक्ता—उत्पादकानुकूलव्याप्ताकर्षणात् तादृग्धी-स्ततस्तादृगहंकारस्तत इन्द्रियतन्मात्रमहाभूतानां तादृग्व्यापारात् तादृक्फलाविर्भावः ॥ ३८ ॥

सूक्ष्म शरीरके अन्तर्लीन शुभाशुभोत्पादक वस्तुओं में से जिस समय जिसका अनुकूल आकाश—चारियोंके तत्त्वोंका समूह व्याप्त होता है उस समय उसे वह अपनी ओर आकर्षण करता है । उसके प्रभाव से प्रथम बुद्धितत्त्व का अन्तर्लीन शुभोत्पादक या अशुभोत्पादक पदार्थ प्रकट होता है, तत्पश्चात् अहंकारतत्त्व का अन्तर्लीन उत्पादक तदनन्तर तन्मात्र तत्त्व और इन्द्रियतत्त्वोंका अन्तर्लीन उत्पादक प्रकट होता है इस प्रकार सूक्ष्म-शरीर में व्याप्त होनेके बाद उसका प्रभाव महाभूतात्मक स्थूल शरीर में पडता है । स्थूल-शरीर के सूक्ष्म-शरीर ही के कार्यरूप होनेके कारण उत्पादक पदार्थ दूध में घी की तरह उसमें भी रहते हैं, प्रकट हुए सूक्ष्म-शरीर संबंधी उत्पादक के प्रभाव से और आकाश-चारियोंके व्याप्त तत्त्वों के आकर्षण से स्थूल-शरीरमें वही उत्पादक प्रकट होता है। यद्यपि उत्पादक उस में सर्वत्र संमिलित रहते हैं, तथापि उनका

मुख्यस्थान दिमाग है। इस लिये स्थूल-शरीर का वही विभाग उनके प्रकट होने का मुख्य स्थान है।

जिससमय जैसा उत्पादक प्रकट होता है, उस समय उसी के अनुसार विचार और इच्छायें उत्पन्न होती हैं। तत्पश्चात् वैसा कार्य भी हो जाता है। जैसेः-

क के शरीरोत्पादक पदार्थ में से बलोत्पादक पदार्थ जो कि उसका अंशरूप है, प्रकट हुआ, उसके बलोत्पादिका बुद्धि के उत्पन्न करने के कारण उसे बल प्राप्त करने की इच्छा हुई, तब वह सोचने लगाः-अहाहा! संसार में वही लोग धन्य हैं जिनके शरीर समर्थ और बलवान् हैं, जो कि शरीरसंबन्धी सम्पूर्ण सुख-दुःख सहन कर सकते हैं, इसप्रकार सोचते हुए उसके दिमाग-मेंसे वह पदार्थ ख के दिमाग में गया, उसने उचित उपदेश दे कर उसे बलवान् बना दिया।

सत्यो बोधो धियि सत्त्वस्य व्याप्तौ॥ ३९॥

जिससमय बुद्धितत्त्व में सत्त्वगुण व्याप्त होता है, उससमय कार्य का यथार्थ ज्ञान होता है जैसेः-किसी का ऐसा धनोत्पादक पदार्थ प्रकट हो रहा है। उस में सत्त्व गुण व्याप्त है। इसकारण उसे धनप्राप्ति का ठीक उपाय विदित हो रहा है।

श्रोता–किसकारण से ?

वक्ता-प्रकाशकत्वात् ॥ ४० ॥

सत्त्व गुण में प्रकाश शक्ति के होने से ।

तमसो मिथ्या ॥ ४१ ॥

यदि बुद्धि में तमोगुण व्याप्त हो तो कार्य का ठीक ज्ञान नहीं होता है किन्तु उलटा होता है ॥

रजसः साधारणः ॥ ४२ ॥

रजोगुण के व्याप्त होने पर साधारण ज्ञान होता है अर्थात् कुछ सत्य और कुछ असत्य ।

क्योंकि–साधारण्यात् ॥ ४३ ॥

रजोगुण के साधारण होनेसे ।

अहंकारादिष्वप्येवम् ॥ ४४ ॥

इसी प्रकार अहंकार आदि तत्त्वों में भी सत्त्व आदि गुणों का प्रभाव होता है ।

न बुद्धयादिगुणग्रहः सुशीघ्रमाकर्षणेऽपि प्राबल्येन स्थैर्यासंभवात् ॥ ४५ ॥

आकाश-चारियों के व्याप्ततत्त्व जब अधिक बलवान् होने के कारण बहुत शीघ्रतापूर्वक आकर्षण करते हैं, उससमय भी स्थिरता न होने के कारण बुद्धितत्त्व आदि में प्रकट उत्पादक के गुणों का ग्रहण नहीं होसकता ॥

श्रोता-आकर्षण का वर्णन कीजिये,

वक्ता-अन्यत्राग्निजलन्यायादनुकूलानामेवाकर्षणसिद्धिः ॥ ४६ ॥

जो जिसका स्वभाव से आधारक होता है, वही उसका आकर्षक होता है, आकाश-चारी परस्पर आकर्षण से ही परस्पर आधारक हैं अर्थात् जिस से जिसका अवस्थान होता है, वह उसका आधारक कहलाता है। जो जिसका विरोधी होता है वह उसका अवस्थान नहीं कर सकता है, किन्तु उसे इधर उधर चलायमान कर देता है। वह काम विक्षेपशक्ति से जो कि आकर्षण शक्ति से विपरीत है होता है। अग्नितत्त्व और जलतत्त्व के समान प्रतिकूल तत्त्वों में विक्षेप-शक्ति और अनुकूल तत्त्वों में आकर्षण शक्ति होती है।

इति प्रथमखण्डम्।

अथोत्तरखण्डम् ।

श्रोता–अदृश्य उत्पादकों के फल का ज्ञान किसप्रकार होता है?

वक्ता–उत्पादकानामान्तरतम्येऽपि फलस्य ज्ञानं बाह्यानुभवात् ॥ १ ॥

यद्यपि उत्पादक अदृश्य हैं, तथापि आकाश-चारियों द्वारा अनुभव से फल का ज्ञान होता है ।

बाह्यलिङ्गैरिवान्तःस्थूलविकाराणाम् ॥ २ ॥

जिसप्रकार बाहर के लक्षणों से स्थूल–शरीर के भीतर के विकारों का ज्ञान होता है उसीप्रकार आकाश-चारियों के लक्षणों से उत्पादकों का ज्ञान होता है ।

श्रोता–कुछ वर्णन कीजिये,

वक्ता–जन्मकालिकखेचरेभ्यस्तत्त्वानामानुकूल्यात् ॥ ३ ॥

जिससमय आकाश-चारियों के तत्त्वों का ऐसा समूह व्याप्त होता है, कि उसकी गर्भ में स्थित जीव के शरीर से ऐसी अनुकू-

लता हो, कि उसका पूर्ण अनुकूलता से अधिक अन्तर नहीं हो, उससमय उत्पादक प्रकट होकर गर्भ-वायु को प्रेरित करता है, वह गर्भ को चलायमान कर देता है। पश्चात् अधिक अनुकूलता के होने पर वह उसे इसीप्रकार उस स्थान से कुछ आगे चलायमान कर देता है। इसप्रकार जैसे जैसे आकाश-चारियों की व्याप्त तत्त्वों की उसके शरीर से अनुकूलता होती रहती है वैसे वैसे वह उनके आकर्षण से आगे आगे आता रहता है। यदि किसीसमय कुछ प्रतिकूलता होती है तो उतने समय पर्यन्त उसका अवरोध होता है। इसप्रकार जिस समय आकाश-चारियों का ऐसा तत्त्वसमूह व्याप्त होता है, कि उसकी गर्भ में स्थित जीव के शरीर से पूरी अनुकूलता हो, उस समय पूरा कार्य हो जाता है अर्थात् जीव माता के शरीर में से बाहर निकल आता है। इस कारण जन्म-समय संबन्धी आकाश-चारियों के व्याप्त तत्त्वों के अनुकूल ही तत्त्व जीव के शरीर में प्रतीत होते हैं। इस कारण जन्म समय के आकाश-चारियों द्वारा सुख-दुःख का जानना उचित्त प्रतीत होता है।

श्रोता—यह विषय कुछ सविस्तर कहिये जिस से स्पष्ट जान-लिया जायगा।

वक्ता—सुनिये !

स्वस्वानुकूलेभ्यो व्यष्ट्या सर्वेषाम् ॥ ४ ॥

जिस वस्तु की अनुकूलता जिन आकाश-चारियों से होती है, उसका ज्ञान उनके द्वारा होता है ॥ ४ ॥

श्रोता—किस प्रकार से ?

वक्ता--तदुत्पादकानां चानुकूल्यात् ॥ ५ ॥

जिन आकाश-चारियों से जिसकी अनुकूलता होती है, उन्हीं से उसके उत्पादक की भी अनुकूलता होती है ॥ ५ ॥

श्रोता—किस प्रकार से ?

वक्ता--स्वानुकूलानामेव तेषामुत्पादनात् ॥ ६ ॥

वे अपने अनुकूल ही को उत्पन्न करते हैं । इस कारण उनमें से जो जिसका उत्पादक है, उस से उसकी अनुकूलता स्वयं सिद्ध हो गई । अनुकूल कार्य का उत्पन्न करना प्रथमखण्ड के ३८ वें सूत्र में प्रतिपादित है ।

श्रोता—विरुद्धधर्मवाले आकाश-चारी अनुकूल क्यों नहीं होते हैं ?

वक्ता--नासदृशमनुकूलं विरुद्धधर्मिणः--प्रातिकूल्यात् ॥ ७ ॥

जो जिसका समान-धर्मी नहीं होता है, वह उसका अनुकूल नहीं होता है. क्योंकि विरुद्धधर्मवाला प्रतिकूल होता है ॥ ७ ॥

लग्नाच्छरीरस्य सहाविर्भावात् ॥ ८ ॥

जन्म समय में जिस राशि का उदय होता है उसे जन्म लग्न कहते हैं इस कारण जन्म लग्न के व्याप्त तत्त्वों की और शरीर की सदृशता सिद्ध होती है । जिस प्रकार योनि से बालक का आविर्भाव होता है, उसीप्रकार क्षितिज से जन्मलग्न का आविर्भाव होता है । जिस प्रकार बालक का शरीर कोमल होता है उसी प्रकार जन्म लग्न के व्याप्त तत्त्वों का समूह भी कोमल होता है जैसा कि उदय होनेके समय सूर्यका तेज कोमल होता है। इस कारण जन्म लग्न से शरीर के शुभाशुभ का ज्ञान होता है, जन्म लग्न से शरीरकी सदृशता के सिद्ध होने से सिद्ध होता है कि वह उसका अनुकूल होता है, इसलिये शरीरोत्पादक भी जन्म-लग्न का अनुकूल सिद्ध होता है इस से स्पष्ट विदित होता है कि जन्म समय में जन्म-लग्न के व्याप्त तत्त्व जैसे होते हैं वैसा ही शरीरोत्पादक भी होता है । जिस के जन्म-समय में जन्म-लग्न के व्याप्त तत्त्व अपने अनुकूल ग्रहों के साथ सन्मुखावस्थान (योग) आदि संबंध से बलवान् होते हैं, उसका शरीरोत्पादक भी अपने अनुकूल तत्त्वों

के संबंध से वलवान् होता है। जिसके जन्म-समयमें जन्म-लग्न के व्याप्त तत्त्व अपने विरुद्ध ग्रहों के संबंध से दूषित होते हैं उसका शरीरोत्पादक भी प्रतिकूल ग्रहोंके संबंध से दूषित प्रतीत होता है जिसका शरीरोत्पादक वलवान् होता है उसका शरीर नीरोग और वलवान् होता है और वह जिसका दूषित होता है उसका शरीर क्षीण और रोगोंसे दूषित होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिये।

श्रोता–द्वितीयस्थान से धनका ज्ञान किस प्रकार होता है?

वक्ता–द्वितीयादर्थस्य लग्नानुवर्तित्वात् ॥ ९ ॥

द्वितीयस्थान से द्रव्य का ज्ञान इसकारण होता है, कि वह लग्न का अनुवर्ती है अर्थात् लग्न से पीछे रहता है।

क्योंकि–शरीरानुवर्तनात् ॥ १० ॥

द्रव्य शरीर का अनुवर्ती है॥

वक्ता–तदन्तरा तत्स्थैर्यासिद्धेः ॥ ११ ॥

जब जीव को शरीर मिलता है, तभी से उसको द्रव्य (माल) की आवश्यकता होती है, क्योंकि उसके विना शरीर का निर्वाह

नहीं होता है। सब शरीरधारियोंको भोज्य आदि द्रव्यों की आवश्यकता रहती है। इसलिये प्रतीत होता है कि द्रव्य शरीर का अनुवर्त्ती है।

[नवम सूत्र से सिद्ध हो चुका है, कि लग्न शरीर का समानधर्मी है, १०,११ सूत्रों से द्रव्य शरीर का अनुवर्ती सिद्ध हुआ। द्वितीयस्थान लग्न का अनुवर्ती स्वयं सिद्ध है, इसलिये विदित हुआ कि द्रव्य और द्वितीयस्थान का शरीर का अनुवर्ती होना समान धर्म है। इसकारण ७,८ सूत्रों से सिद्ध हो गया, कि द्रव्य, द्वितीयस्थान का अनुकूल है। इसलिये ४, ५, ६ सूत्रों से द्वितीयस्थान से द्रव्य का ज्ञान करना सिद्ध होगया]।

श्रोता–तृतीय स्थान से भ्राता का ज्ञान किसप्रकार होता है ?

वक्ता–तृतीयाद् भ्रातुर्द्वितीयस्य तल्लग्नान्तर्वर्तित्वात् ॥ १२ ॥

तृतीय स्थान से भ्राता का ज्ञान इसकारण होता है, कि उसके और लग्न के बीच में द्वितीयस्थान है।

क्योंकि–तस्य तयोरर्थस्यात्मभ्रात्रोरिव समंव्याप्तेः ॥ १३ ॥

द्वितीय स्थान के लग्न और तृतीय स्थान के मध्यवर्ती होने से स्वयं सिद्ध होता है, कि उसके जितने तत्त्व लग्न में व्याप्त होते हैं, उतने ही तृतीयस्थान में भी । पिता का वीर्य-रूप द्रव्य भी भाइयों को समान मिलता है । इसकारण तृतीयस्थान और भ्राता का समान-धर्मित्व सिद्ध होता है ।

श्रोता—यद्यपि साधारणता से भाइयों में पितृ-वीर्य-रूप द्रव्य-समान ही प्रतीत होता है परन्तु विशेषता से कुछ कुछ अधिकता और न्यूनता भी सिद्ध होती है ।

वक्ता—न विशेषेण वैचित्र्याद् दोषो ग्रहसंबन्धा-दत्रापि तत्सिद्धेः ॥ १४ ॥

विशेष दृष्टि से विचित्रता के देखने पर भी हानि नहीं क्योंकि ग्रहों के संबन्ध से उस विचित्रता की सिद्धि होती है ।

क्योंकि—इतरेणैवार्थः ॥ १५ ॥

यहाँ साधारण धर्म ही से प्रयोजन है विशेष धर्म से नहीं । जो धर्म जिसमें प्रायः दिखाई देता है, वह उसका स्वाभाविक धर्म कहलाता है जो कहीं उसमें अन्यथा भाव दिखाई देता है वह

उपाधि से सिद्ध होता है इसप्रकार ग्रह-संबन्ध-रूप उपाधि यहाँ भी प्रतीत होती है।

श्रोता—भाइयों में पिता के वीर्य-रूप द्रव्य से अन्य द्रव्य के विभाग नियत नहीं हैं, परन्तु द्वितीयस्थान से संपूर्ण द्रव्य का ज्ञान ९,१०, ११ सूत्रों से सिद्ध किया गया है ।

नापितृवीर्ये तदसिद्धेस्तृतीये तदनुकूलानामव्याप्तेः ॥ १६ ॥

पितृवीर्यरूप द्रव्य से अन्य द्रव्य में विभागनियम के न होने से कोई भी हानि नहीं, क्योंकि तृतीयस्थान में द्वितीयस्थान के उन तत्त्वों की जो पितृ द्रव्य से अन्य द्रव्य के अनुकूल हो व्याप्ति ही नहीं हो सकती है।

क्योंकि—स्वीयत्वाभावात् ॥ १७ ॥

प्रथमखण्ड के ४७ वें सूत्र से सिद्ध हो चुका है, कि जो जिसका अनुकूल होता है, वह उसीको आकर्षण करता है, उसे नहीं कर सकता कि जो उसका विरोधी हो, इसकारण तृतीयस्थान का राशि द्वितीयस्थान के उन्हीं पदार्थों को आकर्षण करता है जो पितृ-वीर्य-रूप द्रव्यके अनुकूल हों। यद्यपि पिताका सम्बन्ध वीर्य-रूप द्रव्य से

अन्य द्रव्य के साथ भी है तथापि उसकी अपेक्षा अत्यन्त अल्प होने के कारण उसी से यह अनुभव किया गया है ।

[१२, १३, १४, १५, १६, १७ सूत्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि भ्राताओं में पितृ वीर्य-रूप द्रव्य का लेश और तृतीयस्थान में द्वितीयस्थान के उन पदार्थों का जो पितृ-वीर्यरूप द्रव्य के अनुकूल हों बराबर व्याप्त होना समान धर्म है । शरीर का अभिमानी शरीरी कहलाता है, इसकारण पितृ-सम्बन्धी वीर्य-रूप द्रव्य के समान विभागों का आश्रय-रूप होना भ्राता और तृतीय स्थान में समान धर्म सिद्ध हुआ, उसके सिद्ध होने पर ७, ८ सूत्रों से अनुकूलता सिद्ध हुई । इसकारण ४, ५, ६ सूत्रों से तृतीयस्थान से भ्राता का ज्ञान सिद्ध हुआ]

श्रोता–तृतीयस्थान से पराक्रम का ज्ञान किसप्रकार होता है ?

वक्ता–विक्रमस्य द्वितीयानुवर्तित्वात् ॥ १८ ॥

तृतीयस्थान से पराक्रम का ज्ञान इसकारण किया जाता है कि वह द्वितीयस्थान का अनुवर्ती है ।

क्योंकि–अनर्थानां तदलोकात् ॥ १९ ॥

जिनके पास द्रव्य नहीं है उनमें पराक्रम भी नहीं, वह उन्हीं में सिद्ध होता है कि जिनके पास द्रव्य है । जिसके पास जो द्रव्य

है उसमें उसका सबन्धी पराक्रम है। जिसके पास जो नहीं है, उसमें उसका संबन्धी पराक्रम भी नहीं है, जिसके शरीर में वीर्य आदि शारीरिक द्रव्य है, वही वल संवन्धी कार्य कर सकता है, जिसके पास सुवर्ण आदि द्रव्य है, वह सुवर्ण आदि का संबन्धी पराक्रम करता है। इसकारण पराक्रम द्रव्य का अनुवर्ती प्रतीत होता है।

[१८,१९ सूत्रों से प्रतीत होता है कि तृतीयस्थान जैसा द्वितीयस्थान का अनुवर्ती है वैसा ही पराक्रम, द्रव्य का अनुवर्ती है, इस लिये तृतीयस्थान और पराक्रम ये दोनों समान-धर्मी हैं, इसलिये ७, ८ सूत्रोंसे अनुकूलता सिद्ध होने पर ४, ५, ६ सूत्रोंसे तृतीयस्थान से पराक्रम का ज्ञान सिद्ध हुआ]।

श्रोता—तृतीयस्थान से भृत्य का ज्ञान किसप्रकार होता है?

वक्ता—भृत्यस्याप्यत एव ॥ २० ॥

तृतीयस्थान से भृत्य का ज्ञान इसकारण होता है, कि वह भी द्रव्य का अनुवर्ती है क्योंकि जो द्रव्य देने से सेवा करता है वही भृत्य कहलाता है।

[२० वें सूत्र से विदित हुआ कि भृत्य द्रव्यका अनुवर्ती है, १८ वें सूत्र में वर्णित कर दिया है कि तृतीयस्थान द्वितीयस्थान का

अनुवर्ती है, ९,१०, ११ सूत्रों से द्रव्य द्वितीयस्थान का समानधर्मी सिद्ध हो चुका है ।

इसकारण द्रव्य का अनुवर्ती होना तृतीयस्थान और भृत्य में समान धर्म है इसकारण ७, ८ संख्यावाले सूत्रों से उनकी अनुकूलता सिद्ध हुई, उसके सिद्ध होने पर ४, ५, ६ संख्यावाले सूत्रों से तृतीयस्थान से भृत्य का ज्ञान सिद्ध हुआ] ।

श्रोता–चतुर्थस्थान से सुख का ज्ञान किसप्रकार होता है ?

वक्ता–चतुर्थात् सुखस्य तृतीयानुवर्तित्वात् ॥ २१ ॥

चतुर्थस्थान से सुख का ज्ञान इसकारण होता है कि वह तृतीयस्थान का अनुवर्ती है ।

क्योंकि–विक्रमात् तत्सिद्धेः ॥ २२ ॥

सुख पराक्रम से होता है इसलिये वह पराक्रम का अनुवर्ती है ।

[२१, २२ संख्यावाले सूत्रों से सिद्ध होता है कि जिसप्रकार चतुर्थस्थान तृतीयस्थान का अनुवर्ती है उसीप्रकार सुख पराक्रम का अनुवर्ती है इसकारण ७, ८ संख्यावाले सूत्रों से उनकी अनु-

कूलता सिद्ध हुई । इसलिये ४, ५, ६ संख्यावाले सूत्रों से चतुर्थ-स्थान से सुख का ज्ञान सिद्ध हुआ]

श्रोता–चतुर्थस्थान से भूमि का ज्ञान किसप्रकार होता है ?

वक्ता–भूमेर्नीचैराधारकत्वात् ॥ २३ ॥

चतुर्थस्थान से भूमि का ज्ञान इसकारण होता है कि वह नीचे भूमि के समान आधारकरूप है अर्थात् जिसप्रकार भूमि नीचे से स्वाभाविक आकर्षण शक्तिद्वारा मनुष्यादिकोंको धारण करती है उसीप्रकार वह भी आकर्षण शक्ति से भूमि को धारण करता है ।

क्योंकि–अन्यथा दशमाकर्षणेन वैकल्यात् २४

यदि उस समय चतुर्थस्थान भूमि को आकर्षण नहीं करता तो दशमस्थान के अपनी ओर आकर्षण करने से भूमि की शक्ति में विकलता हो जाती ।

असमसूत्रवर्तित्वेऽपि न दोषो राश्यन्तरेभ्यस्तस्यैवाधस्त्वनत्वात् ॥ २५ ॥

शून्य अक्षांशवाले देश में जब सायन मेषराशि का आरम्भ दशम-स्थान होता है वह सीधे खड़े मनुष्य के सिर की ओर होता है और

दशमस्थान ऐसे समसूत्रवर्ती निरक्षदेश में भी नहीं होते हैं अन्य देशों में किसीसमय में भी दशमस्थान सिर की ओर नहीं होता । तथापि यहाँ दोष नहीं समझना चाहिये, क्योंकि और राशियों से वह सर्वत्र नीचे ही होता है ।

[२३, २४, २५ संख्यावाले सूत्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भूमि और चतुर्थस्थान में नीचे से आधारक रूप होना समान धर्म है, इसकारण ७, ८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४, ५, ६ संख्यावाले सूत्रों से चतुर्थस्थान से भूमि का ज्ञान सिद्ध हुआ]

मातुर्जन्मभूमित्वात् ॥ २६ ॥

जन्मभूमिरूप होने के कारण चतुर्थस्थान से माता का ज्ञान होता है ॥

वाहनस्य यानभूमित्वात् ॥ २७ ॥

यान भूमिरूप होने के कारण वाहन का ज्ञान भी चतुर्थस्थान से होता है ।

गृहस्य निवासभूमित्वात् ॥ २८ ॥

चतुर्थस्थान से घर का ज्ञान इसकारण होता है, कि वह निवासभूमि है।

मित्रस्य भूम्याधारकत्वसाधर्म्यात् ॥ २९ ॥

मित्र का भूमि से आधारकत्वरूप समान धर्म है, क्योंकि मित्र वही कहलाता है जो सहायता करता है इसकारण चतुर्थस्थान से मित्र का ज्ञान होता है।

श्रोता–चतुर्थस्थान से मित्र का ज्ञान सिद्ध करना है, भूमि से समानधर्म के सिद्ध होने से क्या फलसिद्धि ?

वक्ता–समानधर्मिसमानधर्मिणापि साधर्म्यात् ॥ ३० ॥

जो जिसका समान-धर्मी होता है उसका समान-धर्मी भी उसका समान-धर्मी होता है, इसकारण भूमि से समान-धर्मित्व के सिद्ध होने पर चतुर्थस्थान से भी समान-धर्मित्व सिद्ध हो गया।

[२९, ३० संख्यावाले सूत्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि चतुर्थस्थान और मित्र में आधारकत्वरूप समानधर्म है इसकारण ७, ८ संख्यावाले सूत्रों से परस्पर अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४, ५, ६ संख्यावाले सूत्रों से मित्र का ज्ञान सिद्ध हुआ]।

सुखस्याधारकाश्रितत्वाच्च ॥ ३१ ॥

चतुर्थस्थान से सुख का ज्ञान इसकारण भी होता है, कि सुख आधारक का आश्रित है, क्योंकि जो पदार्थ आधारक अर्थात् धारण करनेवाला होता है, उसी से सुख होता है । ३१ संख्यावाले सूत्र से प्रतीत होता है, कि सुख का आश्रय पदार्थ आधारक होता है २९, ३० संख्यावाले सूत्रों से चतुर्थस्थानमें आधारकत्व सिद्ध होता है । इस कारण सुखाश्रयवस्तु और चतुर्थस्थान में आधारकत्व-रूप समान-धर्म सिद्ध हुआ, इस कारण ७ । ८ संख्यावाले सूत्रों से परस्पर अनुकूलता के सिद्ध होनेपर उस स्थान से सुखाश्रय वस्तु का ज्ञान सिद्ध हुआ । आश्रय और आश्रयी के अभेदोपचार से उसीको सुखस्थान भी कहते हैं ।

ततश्च विक्रमस्य तृतीयानुवर्तित्वात् ॥३२॥

तृतीयस्थान से इस कारण भी पराक्रम का ज्ञान होता है कि चतुर्थस्थान से सुख का ज्ञान होता है ।

क्योंकि—तयोस्ताभ्यां पूर्ववर्तित्वात् ॥ ३३ ॥

पराक्रम सुखका पूर्ववर्ती है और चतुर्थ-स्थान तृतीय-स्थानका पूर्ववर्ती है ।

२३ वें सूत्रमें स्पष्ट हैं कि तृतीय-स्थान चतुर्थ-स्थान का पूर्ववर्ती और पराक्रम सुखका पूर्ववर्ती है। ३१ वें सूत्र से चतुर्थ-स्थान सुख का समान-धर्मी सिद्ध हो चुका है, इसकारण पराक्रम और तृतीयस्थान में सुख का पूर्ववर्ती होना समानधर्म सिद्ध हुआ। इस कारण ७ वें ८ वें सूत्र से अनुकूलताके सिद्ध होने पर ४ थे ५ वें छठे सूत्र से सिद्ध हुआ कि तृतीय-स्थान से पराक्रम का ज्ञान हो।

श्रोता—पञ्चम-स्थान से सन्तान का ज्ञान किस प्रकार होता है?

वक्ता—पञ्चमात् सन्ततेश्चतुर्थानन्तरमाविर्भावात् ॥ ३४ ॥

पञ्चम-स्थान से सन्तान का ज्ञान इस कारण होता है चतुर्थ-स्थान का आविर्भाव होने से पीछे उसका आविर्भाव होता है।

संतान की उत्पत्ति का पूर्व-रूप वीर्य का आविर्भाव है।

श्रोता—क्या चतुर्थस्थान वीर्यस्थान है? यदि है तो किस प्रकार?

वक्ता—शरीराधारकत्वेन चतुर्थस्य वीर्यस्थानत्वसिद्धिः ॥ ३५ ॥

२९–३० संख्यावाले सूत्रों से चतुर्थस्थान का आधारकत्वरूप धर्म सिद्ध हो चुका है और वीर्य शरीर का आधारक होने के कारण सब आधारकोंमेंसे मुख्य आधारक है। इस कारण चतुर्थस्थान वीर्य का स्थान भी सिद्ध होता है ।

(३५ संख्यावाले सूत्र से चतुर्थस्थान वीर्य-स्थान सिद्ध हुआ । इस लिये ३३,३४ संख्यावाले सूत्रों से पञ्चमस्थान और सन्तान में वीर्यसे अनन्तर आविर्भूत होना समानधर्म सिद्ध हुआ । इस कारण ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४,५,६; संख्यावाले सूत्रों से पञ्चम-स्थान से सन्तान का ज्ञान सिद्ध हुआ)

द्वन्द्वसुखजत्वाच्च तत्सिद्धिः ॥ ३६ ॥

पञ्चम स्थान से संतान का ज्ञान इस कारण भी होता है कि वह स्त्री-पुरुषों के सुखभोग से उत्पन्न होता है ।

[चतुर्थस्थान ३१ संख्यावाले सूत्र से सुखस्थान और ३६ संख्यावाले सूत्र से वीर्यस्थान सिद्ध हो चुका है । इस लिये सुख से अनन्तर आविर्भाव होना पञ्चमस्थान और सन्तानमें समानधर्म सिद्ध हुआ अतएव ७,८ संख्यावाले सूत्रोंसे अनुकूलताके सिद्ध होने

पर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से पञ्चम-स्थान से सन्तान का ज्ञान सिद्ध हुआ] ।

श्रोता—षष्ठ स्थान से शत्रु का ज्ञान किस प्रकार होता है ?

वक्ता—षष्ठादरेस्तत्रास्ते लग्नोदयारम्भात् ॥३७॥

षष्ठ-स्थान से शत्रु का ज्ञान इस कारण होता है कि उसी समय से लग्न के उदय का आरम्भ होता है जब कि उस स्थान का अस्त हो जाता है ।

क्योंकि—अर्यस्तमन्तरोदयानुपपत्तेः ॥ ३८ ॥

जब शत्रु का अर्थात् विरोधी वस्तु का अस्त (नाश) हो जाता है, तभी उदय (उन्नति) का आरम्भ होता है ।

समावेव तावाविर्भावानाविर्भावसाधारण्यात् ॥३९

वे दोनों ही उदय और अस्त आविर्भाव और तिरोभाव धर्म के समान होने के कारण समान ही हैं ।

[९ संख्यावाले सूत्र से सिद्ध हो चुका है कि लग्न, शरीर का समान-धर्मी है, इस कारण शरीर के आविर्भाव से पहले ही तिरो-भाव होना विरोधी और षष्ठ स्थान में समानधर्म सिद्ध हुआ । इस

लिये ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होनेपर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रोंसे षष्ठ स्थानसे शत्रुका ज्ञान सिद्ध हुआ]।

श्रोता—सप्तमस्थान से स्त्री का ज्ञान किस प्रकार होता है ?

वक्ता—सप्तमात् स्त्रियो लग्नसन्मुखत्वात् ॥४०॥

सप्तम स्थान से स्त्री का ज्ञान इस कारण होता है कि वह लग्न का सन्मुख है ।

तयोरन्योन्यसन्मुखयोरन्योन्याकर्षणोत्थतत्त्व-समुदाययोर्भूगोले स्त्रीपुंसयोर्बीजयोर्योनाविव संश्लेषात् ॥ ४१ ॥

जिस प्रकार परस्पर सन्मुख स्त्री और पुरुष के बीजोंका योग गर्भाशय में होता है उसी प्रकार परस्पर सन्मुख लग्न और सप्तम के परस्पर आकर्षण से उत्पन्न सूक्ष्म पदार्थों का योग भूगोल में होता है ।

[४०,४१ संख्यावाले सूत्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि परस्पर स्वाभाविक सन्मुख आकर्षण से उत्पन्न वस्तु का योग होना लग्न और सप्तममें तथा स्त्री और पुरुषमें समानधर्म है । ९ संख्यावाले सूत्र से सिद्ध हो चुका है, कि लग्न शरीर का समानधर्मी है ।

इसकारण स्त्री का शरीर स्वयं ही सप्तमस्थान का समान-धर्मी सिद्ध हो गया। इसलिये ७-८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होनेपर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से सप्तम स्थान से स्त्री का ज्ञान सिद्ध हुआ]

श्रोता—अष्टम स्थान से नाश का ज्ञान किस प्रकार होता है?

वक्ता—अष्टमान्नाशस्य लग्न उदितेऽस्तारम्भात् ॥ ४२ ॥

अष्टम–स्थान से नाश इसकारण होता है कि उसके अस्त का आरम्भ उसीसमय से होता है जब कि लग्न का उदय हो जाता है।

क्योंकि—जातोदयस्य नाशकस्य चास्तारम्भात् ॥ ४३ ॥

जिसका उदय जिससमय होता है, उसके नाशक वस्तु का अस्त होना भी उसी समय से आरम्भ हो जाता है।

[९ संख्यावाले सूत्र से सिद्ध हो चुका है, कि लग्न, शरीर का समानधर्मी है, इसकारण विदित हुआ, कि शरीर का उदय होनेपर अस्त होने लगना अष्टम स्थान और नाशक वस्तुओं में

समान धर्म है । इसकारण ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से अष्टमस्थान से नाशका ज्ञान सिद्ध हुआ]

श्रोता-दशम स्थान से राज्य का ज्ञान किस प्रकार होता है ?

वक्ता-दशमाद्राज्यस्य नृपतेरिव महसः प्राधान्येन व्याप्तेः ॥ ४४ ॥

दशम-स्थानसे राज्य का ज्ञान इस कारण होता है, कि उसका तेज अन्य राशियों के तेज से भूमि में अधिक व्याप्त होता है जैसा कि राजा का तेज ।

[४४ संख्यावाले सूत्र से दशम-स्थान और राज्य में प्रधानतारूप समानधर्म सिद्ध हुआ. इसकारण ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से दशम स्थान से राज्य का ज्ञान सिद्ध हुआ ।

ततश्च चतुर्थाद् भूम्यादीनां सन्मुखत्वेन सम्बन्धाधिक्यात् ॥ ४५ ॥

चतुर्थ स्थान से भूमि आदि का ज्ञान इस कारण होता है कि वह दशम स्थान का सन्मुख होता है सन्मुखता से उनमें परस्पर

अधिक संबन्ध प्रतीत होता है। भूमि में परस्पर सन्मुख राशियों के व्याप्त तत्त्व समुदायों में जैसी एकता होती है वैसी अन्य राशियों के व्याप्त तत्त्व समुदायों में नहीं, कारण यह है कि अन्यराशियों में निबद्ध सूत्र भूमि में नहीं पडते हैं ?

[४५ संख्यावाले सूत्रसे विदित होता है कि चतुर्थस्थान और भूमि-सुख आदि में अधिक राजसंबन्ध-रूप धर्म-सादृश्य है, क्यों कि दशम स्थान ४६ संख्यावाले सूत्र से राज्यस्थान सिद्ध हो चुका है। इसकारण ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से चतुर्थ-स्थान से भूमिसुख आदि का ज्ञान सिद्ध हुआ] ।

श्रोता—दशम-स्थान से पिताका ज्ञान किस प्रकार होता है ?

वक्ता—पितुश्चतुर्थेन लग्नसप्तमयोरिवान्योन्य-संबन्धात् ॥ ४६ ॥

दशम स्थानसे पिताका ज्ञान इस कारण होता है कि उसका चतुर्थ स्थान से ऐसा सम्बन्ध है कि जैसा लग्न का सप्तम से ।

[३६ संख्यावाले सूत्र में वर्णित है कि दशमस्थान का चतुर्थ-स्थान से ऐसा सबन्ध है जैसा कि लग्न का सप्तम से ४१,४२, संख्यावाले सूत्रों से लग्न और सप्तम का पुरुष और स्त्री के साथ परस्पर समान धर्म सिद्ध हो चुका है । २६ संख्यावाले सूत्र से चतुर्थ स्थान माता का समानधर्मी सिद्ध होचुका है। माता पिता की स्त्री होती है, इस कारण पिता और दशम स्थान में चतुर्थ-स्थानके साथ स्त्री-भावरूप समान धर्म है इस कारण ७,८ संख्या-वाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होनेपर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से दशम स्थान से पिता का ज्ञान सिद्ध हुआ]।

श्रोता-और कहिये—

वक्ता-नवमैकादशद्वादशेभ्यो धर्मभाग्याय-व्ययानां सदशमसाविर्भावपौर्वापर्य-क्रमात् ॥ ४७ ॥

नवम स्थान का आविर्भाव दशम स्थान के आविर्भाव से पहले होता है। इस कारण नवम स्थान से धर्म और भाग्य का ज्ञान होता है, एकादश स्थानका आविर्भाव दशम स्थानके आविर्भाव से

पीछे होता है इस कारण एकादश स्थान से लाभ का ज्ञान होता है, एकादश स्थान का आविर्भाव होने पर द्वादश स्थानका आविर्भाव होता है इस कारण द्वादशस्थान से व्यय का ज्ञान होता है।

[दशम स्थान के आविर्भाव से पहले नवम स्थानका आविर्भाव होता है राज्यसे पहले धर्म और भाग्यका आविर्भाव होता है, क्योंकि धर्म और भाग्य के विना ऐश्वर्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ४४ संख्यावाले सूत्र से विदित होता है कि दशमस्थान राज्य का समानधर्मी है, इस कारण राज्य से पहले आविर्भाव होना नवम स्थान और धर्म-भाग्य में समान धर्म सिद्ध हुआ। इसलिये ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रोंसे नवम स्थान से धर्म और भाग्य का ज्ञान सिद्ध हुआ]

[दशम स्थान का आविर्भाव होनेपर एकादशस्थान का आविर्भाव होता है, राज्य का आविर्भाव होनेपर सब वस्तुओंकी प्राप्ति होती है, ४४ संख्यावाले सूत्रसे दशम स्थान राज्यका समान धर्मी सिद्ध हो चुका है। इस कारण प्राप्ति और एकादश स्थानमें राज्य

का आविर्भाव होनेपर आविर्भाव होना समान धर्म सिद्ध हुआ । इस कारण ७,८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४,५,६ संख्यावाले सूत्रों से एकादश स्थान से लाभ का ज्ञान सिद्ध हुआ] ।

[एकादश स्थान का आविर्भाव होने पर द्वादश स्थान का आविर्भाव होता है, प्राप्ति का आविर्भाव होनेपर व्यय का आविर्भाव होता है । क्योंकि यदि प्राप्ति ही नहीं तो व्यय कहां से ? एकादश स्थान का प्राप्ति के साथ समान धर्म सिद्ध हो चुका है । इसकारण प्राप्ति का अविर्भाव होने पर आविर्भाव होना द्वादशस्थान और व्यय में समान धर्म सिद्ध हुआ, इसकारण ७, ८ संख्यावाले सूत्रों से अनुकूलता के सिद्ध होने पर ४, ५, ६ संख्यावाले सूत्रों से द्वादशस्थानसे व्यय का ज्ञान सिद्ध हुआ] ।

सप्तमादेकादशत्वाच्च पञ्चमात् सन्ततेः ॥४८॥

पञ्चम स्थान से सन्तान का ज्ञान इसकारण भी होता है, कि वह सप्तम स्थान से एकादश होता है ।

क्योंकि—स्त्रियस्तदाप्तिवैशिष्ट्यात् ॥ ४९ ॥

स्त्रीसंबन्धी लाभों में से सन्तान का लाभ ही मुख्य है।

अन्येषामप्येवमेभ्यः ॥ ५० ॥

इसीप्रकार लग्न आदि स्थानों से अन्य वस्तुओं का भी ज्ञान सिद्ध होता है ॥

सर्वस्यैवमुपपत्तिसिद्धत्वादास्तिक्यसिद्धिरिति ॥ ५१ ॥

इसप्रकार सब फलित की उपपत्ति सिद्ध होने से सिद्ध हुआ कि आकाश—चारियों के चार के अनुसार शुभ और अशुभफलका ज्ञान करना ठीक है।

इति श्रीकूर्माचलीय–श्रीनीलाम्बरज्योतिर्विदात्मजस्य तारादत्त-ज्योतिर्विदः कृतौ स्वकृत-शतसूत्रीभाषाव्याख्याने उत्तर-खण्डं संपूर्णम्।

श्लोकः—या कूर्माचलशोभनीयवसतिर्नाम्नाल्मोडा पुरी,
किंचिद्दूर इतो विधिज्ञवसतौ ग्रामेऽत्र मालाभिधे।
नानाभूपतिसत्कृतस्य सुमतेः सूत्राणि सूनुः शतं,
तारादत्त इति व्यधत्त विधिविन्नीलाम्बरस्याग्रजः ॥ १ ॥

सं० १९६५ वैशाखशुक्लचतुर्दश्यामिदं पुस्तकं सम्पूर्णम्। सं०१९९५ कार्तिक-कृष्ण-नवम्यां जुब्बल-राजधान्यां लिखित्वा पुनः समापितम्।

प्रथमसूत्रस्य विशिष्टं व्याख्यानम्—अस्तिशब्दोऽत्र सत्तावाचित्वान्मङ्गलाचरणं च सूचयति। खेचराणां देवत्वात्तच्चरितवर्णनं चात्र मङ्गलाचरणाय।

देवतावादः।

अपूर्वमात्रेण तुष्टो जैमिनिर्न देवतां द्वेष्टीति तत्त्ववादेन व्याख्यातस्य ग्रन्थस्यास्य देवतावादप्रतिकूलत्वं न शङ्क्यम्।

देवतावादे ' अस्ति फलं खेचरचारानुसारात् ' इत्यस्य व्याख्यानं खेचररूपा ये ईश्वरस्य चारास्तेषामनुसारात्, खेचराणां विभूतिरूपा ये देवास्तेषामनुसारात् इति वा कार्यम्।

श्रुतिः—अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा ꣳ रेता ꣳ सि जिन्वति ॥

(यजु० अ० ३, मं० १२.)

अर्थः—दिवः मूर्द्धा मूर्द्धनि ककुत् प्रधानः महान् पृथिव्याः पतिः अयम् आकाश-चारिरूपः अग्निः अपाम् कर्मणाम् रेतांसि साररूप-पदार्थान् जिन्वति ।



अथ परिशिष्टसूत्राणि ।



अथ खादिव पितुः पततीत्यतश्च दशमात् पितुर्ज्ञानम् ॥ १ ॥ पतनाश्रयत्वाच्च चतुर्थान्मातुः ॥ २ ॥ लग्नपञ्चमत्वान्नवमाच्च पितुः ॥ ३ ॥ नवमलग्नपञ्चमानां विशिष्टसम्बन्धात् तेभ्यो विशिष्टसंबन्धवतां पित्रात्मपुत्राणाम् ॥ ४ ॥ स त्रिकोणत्वेनान्योन्याकर्षणाधिक्यात् ॥ ५ ॥ तत्र नवमात् पितुः प्रथमत्वात् ॥ ६ ॥ पञ्चमात् पुत्रस्य परत्वात् ॥ ७ ॥ सप्तमात् कामस्याकर्षणाधिक्यात् ॥ ८ ॥ तदाश्रयत्वाद् गुह्याङ्गस्य ॥ ९ ॥ गुप्तस्थानत्वात् प्रधानाकर्षकत्वाच्च स्तेनस्य ॥ १० ॥ अष्टमान्नष्टस्य स्तेनधनत्वात् ॥ ११ ॥ उत्पत्तिस्थानप्रथमत्वाच्च द्वादशादभावस्य ॥ १२ ॥ अभावसबन्धित्वाच्च षष्ठाद् वैरिणः ॥ १३ ॥ अष्टमादायुषस्तस्य दशमतो लाभत्वात् ॥ १४ ॥ महःस्थानत्वाद् दशमस्य ॥ १५ ॥ अष्टमादप्यष्टमादायुष आयुषोऽप्यायुष्ट्वात्पराशरमते ॥ १६ ॥ ताभ्यां व्ययान्मृत्योः पराशरोक्त्या ॥ १७ ॥ अष्टमस्याशुभत्वस्य च ॥ १८ ॥ उत्तरस्य बलवत्त्वमायुषो मूलस्य व्ययस्थानत्वात् ॥ १९ ॥ अभिपश्यन्ति ग्रहा आकर्षणाधिक्यात् ॥ २० ॥ अतः

सप्तमे पूर्णा दृष्टिः ॥ २१ ॥ नवमे पञ्चमे न्यूनान्यूनाकर्षणात् ताजिकमते ॥ २२ ॥ एवं तृतीयैकादशयोस्ततोऽल्पा ॥ २३ ॥ एकर्क्षेऽप्याकर्षणाधिक्यात् पूर्णा ॥२४॥ शुभाशुभदृग्योगाभ्यां शुभाशुभमानुकूल्यानानुकूल्याभ्याम् ॥ २५ ॥ स्वगृहे क्रूरस्यापि शुभत्वं स्वीयत्वात् ॥ २६ ॥ स्वगृहोपपत्तिः कालिदासोक्ता ॥ २७ ॥ सूर्यः क्रूरस्तैक्ष्ण्यादसह्यत्वात् ॥ २८ ॥ भौम आग्नेयोऽग्निवद् द्योतमानत्वात् ॥ २९ ॥ रवितेजोयुक्तश्चन्द्रः सौम्यः सह्यप्रकाशयुक्तत्वात् ॥ ३० ॥ असितः पापोऽप्रकाशत्वेन तामसत्वात् ॥ ३१ ॥ सूर्यादात्मनो ज्ञानमात्मन इव देहे जगति प्राधान्यात् ॥ ३२ ॥ प्रकाशकत्वाच्च ॥ ३३ ॥ उत्पादकत्वात् पालकत्वाच्च पितुः ॥ ३४ ॥ प्रकाशकत्वान्नेत्रस्य ॥ ३५ ॥ चन्द्रान्मातुर्मातुरिव पितुः सूर्यस्य तेजसो ग्रहणात् ॥ ३६ ॥ सामीप्येन पोषणाधिक्याच्च ॥ ३७ ॥ वाणिज्यस्य परस्य वस्तु गृहीत्वा वणिज इव परस्मै दानात् ॥ ३८ ॥ मनस आत्मग्रहेण विशिष्टसम्बन्धात् ॥ ३९ ॥ सामीप्याच्च ॥ ४० ॥ नेत्रस्य प्रकाशकत्वात् ॥ ४१ ॥ शैत्यस्य जलस्य च शैत्यात् ॥ ४२ ॥ श्वेतस्य श्वेतत्वात् ॥ ४३ ॥ आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगोऽधिकभागस्य प्राधान्याज्जै-

मिनिमते ॥ ४४ ॥ अधिकशक्तिग्रहणात् ॥ ४५ ॥ अग्रेसरत्वाच्च लोकवत् ॥ ४६ ॥ कारकयोगः प्रथमं भानामित्येकाकिनोऽल्पबलत्वात् ॥ ४७ ॥ साम्येन भूयसेत्यधिकयोगेन तच्छक्तियोगाद् बलवर्धनात्॥४८॥ अल्पबलस्यानिष्टस्य शान्तिरपि दानाद् देयेन सहोत्पादकानिष्टांशस्यापगमात् ॥ ४९ ॥ जपान्मंत्रोच्चारणेनानुकूलशक्त्याविर्भावात् ॥ ५० ॥ मन्त्रस्य पुनःपुनरावर्तनात् सिद्धिस्तथा तथानुकूल्याधिक्यात् ॥ ५१ ॥ स्वभावतस्तत्तद्ग्रहानुकूलवर्णसमुदायात्मकास्तत्तद्ग्रह—मंत्राः ॥५२ ॥ मूर्तिवत् प्रतिष्ठापितत्वाच्च ॥ ५३ ॥ अधिष्ठातॄणां प्रीतेश्चेष्टलाभः ॥ ५४ ॥ उत्पादकपुष्टिर्मुहूर्त्तविचारहेतुर्व्याप्तैः ॥ ५५ ॥ भग्रहाभ्यां युक्ताभ्यामाकृष्टं जलं पतति वियोगात् ॥ ५६ ॥ सूर्यग्रहाभ्यां च ॥५७॥ सूर्ययोगाच्च पूर्वाकृष्टस्य निराकरणात् ॥ ५८ ॥ उत्पादकानां कार्यत्वाद्धस्तरेखादिफलानि ॥ ५९ ॥ शकुनविचारः केरलविचारश्च साम्येन फलसूचनात् ॥ ६० ॥

इयं सूत्रषष्टिः शतसूत्रीकृतस्तारादत्तस्य नैलाम्बरेः कृतिरिति॥६१॥

परिशिष्ट—सूत्र—निर्माण—कालः । संवत् १९९५.

कार्तिक शुक्ल ६ तिथौ जुब्बलराधान्याम् ।

अथ महाकविकालिदासनिर्मिता राशिनाथोपपत्तिः ।

श्लो.पञ्चाननाख्यो हि यथेभचक्रे पञ्चाननोऽयं हि तथा भचक्रे ॥
एनं हरिः पालयितुं क्षमोऽस्य कृतं तदित्येतदगारमाद्यैः ॥
सिंहादिचक्रार्द्धपती रविः स्याद्विलोमकीटादिभखण्डपोऽब्जः॥
पतंगधाम्ना सविधं तमीशः स्थातुं कुलीरं त्वकरोदगारम् ॥
उच्चोच्चमार्गे चरतां ग्रहाणां बुधाननानां भवनानि केन्द्रोः ॥
प्रतिष्ठितान्यालयतः ॥

लल्लाचार्योक्ता संक्षिप्ता ज्यौतिष-फलितोपपत्तिः ।

सकलमपि धिष्ण्यमण्डलभवनिनिबद्धं विनिर्मितं धात्रा, तत्र ग्रहा ग्रहेष्वपि शुभाशुभं सर्वजन्तूनाम् ॥१॥

अर्थः—ब्रह्मा ने सब नक्षत्र पृथिवी के साथ बँधे हुए बनाये हैं अर्थात् वह आकर्षणशक्ति के द्वारा नक्षत्रों के साथ बँधी हुई है, नक्षत्रों में बँधे हुए ग्रह बनाये हैं अर्थात् ग्रह आकर्षणशक्ति के द्वारा

नक्षत्रों के साथ बँधे हुए हैं, और ग्रहों के साथ सब प्राणियों का शुभ और अशुभ बँधा हुआ है, अर्थात् पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों से उत्पन्न शुभ और अशुभ फल देनेवाले पदार्थ आकर्षण शक्ति के द्वारा बँधे हुए हैं, इन्हीं पदार्थोंको ज्यौतिष-मीमांसा-दर्शन में उत्पादक लिखा है। ये स्थूल-शरीर के भीतर सूक्ष्म-शरीर में रहते हैं। इनके परिणाम-रूप जो पदार्थ स्थूल-शरीर में विशेषतः दिमाग में रहते हैं, उनका नाम ज्यौतिष-विज्ञान में भावाश्रय और भावाश्रय-प्रवर्तक पदार्थ है।

५६ वें पृष्ठ में लिखी हुई श्रुति का दूसरा अर्थ इन पदार्थों को सूचित करता है।

ककुद् महान् पृथिव्याः पतिः अयम् दिवः अग्निः आकाश–चारिरूपः मूर्धा मूर्धनि अपाम् कर्मणाम् रेतांसि जिन्वति।

(भालवर्णा[२]स्तेतत्परिणामरूपाः)

---

१ सुपां सुलुगित्यादिना ङः सुः। २ आधानकाले कमलोद्भवेन वर्णावली-भालतलान्तराले ॥ या कल्पिता पश्यति दैववित्ताम्।

भाषार्थः—यह बड़ा पृथिवी का स्वामी आकाश-चारी-रूप अग्नि दिमाग में कर्मों के साररूपपदार्थोंको पुष्ट करता है।

ईषावास्योपनिषद्की चौथी श्रुति के भाष्यमें लिखा है, कि आप्यन्ते प्राप्यन्ते सुखदुःखानि याभिस्ता आपः कर्माणि 'आप्नोतेर्ह्रस्वश्च' (उणादि २।५९) इति क्विप् धातोर्ह्रस्वश्च। तदनुसार यहां अप्शब्द का अर्थ कर्म लिखा है। पुण्य और पाप-कर्मोंके करने से जो पदार्थ सूक्ष्म-शरीर में संचित होते हैं उनका नाम अप् है जब वे परिपक्व होते हैं, तब उनका रेतस नाम होता है। स्थूल-शरीर की उत्पत्ति सूक्ष्म-शरीर से है इसलिये इनके परिणामरूप पदार्थ दिमाग में रहते हैं।

५६ वें पृष्ठ में लिखे हुए अर्थ की भाषा व्याख्या इस-प्रकार है:—

आकाश के ऊपर बड़ा पृथिवीका स्वामी यह आकाश-चारी-रूप अग्नि कर्मों के सार-रूप पदार्थों को पुष्ट करता है अर्थात् अपनी शक्ति से बढ़ा कर उन्हें कार्य रूप-में परिणत करता है।

---

१ महीधरभाष्यमें।

ज्योतिष के अनुसार वृष्टि-प्रकरण में इसका अर्थ इसप्रकार है:—
आकाश के ऊपर बड़ा पृथिवी का स्वामी यह आकाशचारी-रूप अग्नि जलके बीजों को पुष्ट करता है ।

बृहस्पतिः—

कर्मणः फलदातारः सूचकाश्च सदा ग्रहाः ॥

अर्थः—ग्रह कर्मों का फल देनेवाले हैं और उसकी सूचना करने वाले भी हैं.

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥

[यजुर्वेदतैत्तिरीयपाठ—अ० ३१ कं० १]

सायनभाष्यम् ।

सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्रशीर्षः, सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः ।

---

१ एक एव हि वेदस्तु वेदार्थश्चैक एव हि । अधिकारिविभेदेन वेदोऽर्थश्चाप्यनेकधा ॥ १ ॥

यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात् तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम्। एवमक्षिषु पादेष्वपि योजनीयम्। स पुरुषो भूमिं ब्रह्माण्डगोलरूपां विश्वतो वृत्वा सर्वतः परिवेष्ट्य दशांगुलमितदेशम् अत्यतिष्ठत् अतिक्रम्य स्थितः दशांगुलमित्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद् बहिरपि व्याप्यावस्थित इत्यर्थः।

भाषार्थः—

सब प्राणियों का समष्टि-रूप ब्रह्माण्ड-शरीरवाला जो विराट्ट नामवाला पुरुष है वह सहस्र-शीर्षा है, सहस्र शब्द के उपलक्षण होने से अनन्त सिरों से युक्त है ऐसा मतलब है। जो सब प्राणियों के सिर हैं, वे सब उसके शरीर के भीतर होने से उसीके हैं, इसलिये सहस्र-शीर्षत्व है। इसप्रकार आंखों में और पादों में भी योजना करनी चाहिये। वह पुरुष ब्रह्माण्ड-गोलरूप भूमि को सब ओरसे परिवेष्टित करके दशांगुल देश को अतिक्रमण करके स्थित हुआ अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहर भी व्याप्त होकर स्थित हुआ।

इस भाष्य से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि यह सारा ब्रह्मांड विराट्ट-पुरुष का शरीर है इस लिये आकाशचारी उसके बडे

अवयव हैं (एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंगनि भवन्ति । यास्क निरुक्त ७।४।९) अत एव ' नराणां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः ' इस पराशर ऋषि के वाक्य के अनुसार विराट् पुरुष ग्रह-रूप अवयवों द्वारा कर्मों का फल देता है।

चंद्रमा मनसो जातः [यजुर्वेद अ० ३१ क० १२]

अर्थः—चन्द्रमा विराट्—पुरुषके मन से उत्पन्न हुआ।

इस वेद—वाक्य के अनुसार वृहज्जातक के ग्रह योनि—भेदाध्याय के प्रथम श्लोकमें लिखा हुआ हैः—(मनस्तुहिनगुः) अर्थात् चन्द्रमा मन है।

' ब्रह्माण्डे ये गुणा प्रोक्तास्तेऽस्मिन्नेव व्यवस्थिताः ' इस गरुड पुराण के वाक्यानुसार ब्रह्माण्ड में जो गुण हैं, वे शरीर में भी हैं। यह हमारा शरीर एक छोटासा ब्रह्माण्ड है, ब्रह्मांडरूप विराट्-पुरुष-देह में बडी शक्तियां हैं। इस शरीरमें छोटी शक्तियां हैं। बडी शक्तियों की सहायता से छोटी शक्तियां रह सकती हैं इस लिये हमारे शरीर की सब शक्तियां विराट्-पुरुष की आकाश-चारी-रूप बडी शक्तियों की सहायता से रहती

हैं। चन्द्रमा विराट्-पुरुष का मन है। उसकी सहायतासे हम सब के मन रहते हैं अर्थात् हमारे मन आकर्षण-शक्ति-द्वारा चंद्रमा से बँधे हुए हैं। इसलिये ज्योतिः–शास्त्र में उस से मन का ज्ञान लिखा हुआ है।

चक्षोः सूर्यो अजायत [यजुर्वेद अ० ३१ कं० १२]

अर्थः–आंख से सूर्य उत्पन्न हुआ।

बृहज्जातक के निषेकाध्याय के २० वें श्लोक में लिखा हुआ है 'व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रविः' अर्थात् व्यय-भवन (हानि-स्थान) में गया हुआ चन्द्रमा वाम-नेत्र को और सूर्य दक्षिण-नेत्र को नष्ट करता है। चन्द्रमा सूर्य के किरणों से प्रकाशमान होता है, इसलिये उससे भी नेत्र का विचार किया गया है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च [य० अ० ७ कं० ४२]

अर्थः–सूर्य चराचर का आत्मा है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा हैः–'सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः' अर्थात् सूर्य सब प्राणियों का आत्मा और दृष्टि का

स्वामी है । तदनुसार बृहज्जातक के ग्रह-योनि-भेदाध्याय के प्रथम श्लोकमें सूर्य को आत्मा लिखा हुआ है:—(कालात्मा दिनकृत्) अर्थात् सूर्य से आत्मा का विचार लिखा हुआ है ।

अस्ति फलं खेचरचारानुसारात् ॥ १ ॥

खेचराः चारा गूढपुरुषरूपाः सूचकत्वाद्यस्य तस्य अस्य विष्णोरनुसारात् फलमस्ति । कर्मानुसारेणानुकूल्ये शुभं, प्रातिकूल्येऽशुभं फलमित्यर्थः ।

चरमस्थिरं विनाशशीलम् । आत्मनो नित्यत्वाच्छरीरस्यानित्यरत्वाच्च तेनात्र शरीरं लक्ष्यते । चरस्येमे चाराः शरीरावयवाः । खेचरा एव चाराः शरीरावयवा यस्य तस्य अस्य विराट्पुरुषरूपस्य विष्णोः कर्मानुसारेणानुकूलस्य वा प्रतिकूलस्यानुसारात् फलमस्ति ।

'अपि वा पृथगेव स्युः पृथग्विधस्तुतयो भवन्ति'

(यास्कनिरुक्त ७ । ५ । ५)

इस वाक्य के अनुसार सूर्यादि-मण्डलों के अधिष्ठाता सूर्यादि-ग्रह-रूप पृथक् पृथक् भी चेतन-देवता हैं इसलिये बृहस्पति ने ग्रह, कर्म-फल देनेवाले कहे हैं ।

देवता, जन्मही से अणिमादि-सिद्धि-वाले और निर्दोष होते हैं इसलिये लोक-शासन-कार्य में जैसी इच्छा विराट्-पुरुष की होती है वैसी ग्रहों की भी होती है। इसलिये पराशरमत और बृहस्पति-मत में अभेद-भाव जानना चाहिये।

वास्तव में दैवी शक्तिका नाम ही **प्राकृतिक शक्ति** है, इस-लिये शास्त्रीय-तत्त्व-वाद और देवता-वादमें अभेद जानना चाहिये।

जो जिज्ञासु सज्जन, दार्शनिक-तत्त्व-वाद से अपरिचित हैं, उनकी सेवा के लिये ज्यौतिष-विज्ञान बनाया है। जो दार्शनिक-तत्त्व-वाद से परिचित हैं, उनकी सेवा के लिये ' ज्यौतिष-मीमांसा-दर्शन ' नामक स्वरचित ग्रन्थकी व्याख्या तत्त्व-वाद के अनुसार की है। देवता-वादसे परिचित सज्जनों की सेवा के लिये अन्त में देवता-वाद भक्ति सम्मिलित किया है। विज्ञान-वाद और तत्त्व-वाद-सहित देवता-वाद सर्वोत्तम है।

गायत्रीभाष्ये सायनः—

(यद्वा) यः सविता सूर्यो धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत् सर्वैर्द-

श्यमानतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैर्भजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजोमण्डलं धीमहि ध्येयतया मनसा धारयेम ।

भाषार्थः—जो कर्मों की प्रेरणा करता है, उस सविता (उत्पादक) देव (प्रकाशमान) सूर्य के पाप-नाशक तेजो-मण्डल को, जो सब का प्रत्यक्ष होने के कारण प्रसिद्ध हैं और सब की उपासना करने योग्य है, उसको हम ध्येय-रूप से मन में धारण करते हैं ।

सूर्य, सब ग्रहों से विलक्षण है, उसका इतना बड़ा तेज है, कि उसकी अपेक्षा और ग्रहों का तेज अत्यन्त ही न्यून भासमान होता है । परन्तु ज्योतिःशास्त्र में उसका फल और ग्रहों के समान ही लिखा हुआ है । फलितोपपत्ति के अनुसार ऐसा होना असंभव सा प्रतीत होता है । इस लिये विदित होता है, कि सूर्य-मण्डल का कोई अंश, ग्रहों के समान फल देनेवाला है और शेष अंश और ग्रहों की शक्तियों को अपनी शक्ति से प्रदीप्त करता है, पौर्णमासी के दिन समुद्र का पानी बहुत ऊपर चढता है । उस दिन चन्द्रमा के दृश्य गोलार्द्ध में सूर्य के तेज के संयोग से जलाकर्षण-शक्ति उत्पन्न होती है फलित—ग्रन्थों में भी पूर्ण-चन्द्रमा को बलवान् और क्षीण-चन्द्रमा को

हीन-बल लिखा हुआ है, इसलिये स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर्य की शक्तिसे ग्रहों की शक्तियां प्रदीप्त होती हैं। जिसप्रकार प्रकाश के संयोग से आंखें दर्शन-कार्य करती हैं, उसीप्रकार सूर्य की शक्ति के संयोग से ग्रह, प्रेरण-कार्य करते हैं। जिसप्रकार केवल आंख से या केवल प्रकाश से दर्शन-कार्य नहीं होता है, उसीप्रकार केवल ग्रहों से वा केवल सूर्य-मण्डल के ग्रह-शक्तियों को प्रदीप्त करनेवाले अंश से प्रेरण-कार्य नहीं होता है। सूर्य-मण्डल, अपने ग्रहों के समान फल देनेवाले अंश से मनुष्यों के कर्म-संचित पदार्थों को प्रेरित करता है और अपने दूसरे अंश से ग्रहों की शक्तियों को प्रदीप्त करके उनके द्वारा भी उन पदार्थों को प्रेरित करता है। इसलिये वास्तव में सूर्य ही प्रेरक माना गया है। सूर्य, ग्रहों का स्वामी लिखा हुआ है ('विभावसुर्ग्रहपतिः' इत्यमरः) इसलिये साधारण रीति से भी उसके ग्रहण से सब ग्रहों का ग्रहण हो सकता है। इस जगत में सूर्य-मण्डल विराट्-पुरुष की शक्तियों का बडा कोश

---

१ यथा धौतो घट्टितश्च लाञ्छितो रञ्जितः पटः ॥ ईशसूत्रविराडन्तर्यामिणश्च तथा स्मृताः॥ इति पञ्चदश्याम्।

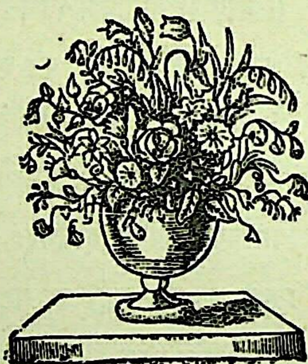
है, इसलिये वह वहाँ से अपनी शक्तियों का संचालन सूर्य-नारायण के रूप से करता है ।

यत्प्रोक्तं ज्यौतिषं शास्त्रं दिव्यदृष्ट्या महर्षिभिः ॥
तस्येदं मननं मत्या स्वल्पया स्वात्मतृप्तये ॥ १ ॥

सं० १९९५ माघ-कृष्ण-प्रतिपदि जुब्बल राजधान्या-

मयमंशः समाप्तः ।

श्रीसवितृदेवार्पणमस्तु ।



मुद्रकः--

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई नं. ४.



प्रकाशकः--

राजकुमारगुरु पं. तारादत्त ज्योतिषी,

रियासत जुब्बल, जिला शिमला.